

इतिहास • तहज़ीब • विरासत

दास्तान-ए-लखनऊ

अतीत से भविष्य तक



नवाबी शान, गंगा-जमुनी तहज़ीब, ऐतिहासिक धरोहर,
चिकनकारी, ख़ान-पान और आम ज़िंदगी की पूरी दास्तान

कामरान असद

संपादक, मानवाधिकार मीडिया

kamranasad.in

दास्तान-ए-लखनऊ

अतीत से भविष्य तक

लखनऊ के इतिहास, नवाबी शान, गंगा-जमुनी तहज़ीब और आम

ज़िंदगी की दस्तावेज़ी दास्तान

लेखक : कामरान असद

प्रथम संस्करण : 2026

© 2026 कामरान असद — सर्वाधिकार सुरक्षित

टिप्पणी : यह पुस्तक कोई औपचारिक इतिहास-ग्रंथ नहीं, बल्कि लखनऊ की पहचान, विरासत और बदलते भविष्य की एक दस्तावेज़ी दास्तान है। इसमें उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों, लोक-परंपराओं और शहर के सामूहिक अनुभव को एक साथ रखा गया है। जिन प्रसंगों के बारे में लोक-कथाएँ प्रचलित हैं, उन्हें कथा के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है; विवादित प्रश्नों पर संतुलित दृष्टिकोण अपनाया गया है। तिथियों और प्रमुख तथ्यों में उपलब्ध प्रामाणिक अभिलेखों का ध्यान रखा गया है।

वेबसाइट : kamranasad.in

समर्पण

लखनऊ के उन आम लोगों के नाम,
जिनकी गलियों, मोहल्लों, हुनर और मेहनत से
यह शहर सदियों से ज़िंदा है —
और हर नई पीढ़ी के साथ फिर से जवान होता है।
— लखनऊ के हर चाहने वाले के नाम

अनुक्रम

1. लेखक की कलम से — एक शहर, हजार दास्तानें
2. अध्याय 1 : गोमती के किनारे — शहर की प्राचीन जड़ें
3. अध्याय 2 : अवध की नींव — सआदत खान से शुजाउद्दौला तक
4. अध्याय 3 : आसफुद्दौला का लखनऊ — राजधानी और बड़ा इमामबाड़ा
5. अध्याय 4 : नवाबी शान — दरबार, नज़ाकत और “पहले आप”
6. अध्याय 5 : वाजिद अली शाह — कलाकार नवाब और विलय का दर्द
7. अध्याय 6 : 1857 की आग — बेगम हज़रत महल और जंग-ए-आज़ादी
8. अध्याय 7 : पत्थरों में इतिहास — ऐतिहासिक इमारतें और धरोहर
9. अध्याय 8 : गंगा-जमुनी तहज़ीब — साझा विरासत की आत्मा
10. अध्याय 9 : अदब का शहर — साहित्य और शायरी
11. अध्याय 10 : सुर, ताल और मंच — संगीत, कथक और दास्तानगोई
12. अध्याय 11 : चिकनकारी — सुई-धागे में ढला शहर
13. अध्याय 12 : खान-पान की दास्तान — कबाब से कुल्फी तक
14. अध्याय 13 : गली-मोहल्ला और बाज़ार — शहर की असली पहचान
15. अध्याय 14 : सियासत का शहर — समझौते से सरकार तक
16. अध्याय 15 : क़लम की ताक़त — पत्रकारिता और छापाख़ाना
17. अध्याय 16 : इल्म के केंद्र — शिक्षा और संस्थाएँ
18. अध्याय 17 : आम आदमी का लखनऊ — शहर की धड़कन
19. अध्याय 18 : बदलता लखनऊ, भविष्य का लखनऊ — अतीत से भविष्य तक
20. परिशिष्ट : लखनऊ — एक दृष्टि में
21. लेखक परिचय

एक शहर, हज़ार दास्तानें

कुछ शहर सिर्फ़ नक्शे पर होते हैं, और कुछ शहर दिल में बसते हैं। लखनऊ दूसरी तरह का शहर है। यहाँ की हवाओं में आज भी नवाबी दरबारों की खुशबू है, गलियों में कारीगरों के हुनर की आवाज़ है, गोमती के पानी में सदियों की कहानियाँ बहती हैं और हर मोहल्ले की चाय की दुकान पर आज भी तहज़ीब की वही पुरानी मीठास मिलती है, जिसका नाम है — “पहले आप”।

मैंने लखनऊ को किताबों से पहले ज़िंदगी से पढ़ा है। इसकी गलियों में घूमते हुए, चौक में कारीगरों से बात करते हुए, पत्रकारिता के सफ़र में आम लोगों की खुशियाँ और परेशानियाँ सुनते हुए — हर दिन लगा कि यह शहर अकेला इतिहास नहीं, एक जीता-जागता दस्तावेज़ है, जो हर दिन खुद को फिर से लिखता है। “दास्तान-ए-लखनऊ” उसी पढ़ने और जीने का नतीजा है।

इस पुस्तक की कोशिश एक ही है — लखनऊ को टुकड़ों में नहीं, पूरा दिखाना। इसकी प्राचीन जड़ें और अवध की नींव, आसफ़ुद्दौला का बड़ा इमामबाड़ा और वाजिद अली शाह का दर्द, 1857 की आग और बेगम हज़रत महल का साहस, पत्थरों में साँस लेती इमारतें, गंगा-जमुनी तहज़ीब की आत्मा, अदब और संगीत की महफ़िलें, चिकनकारी के धागों में बुनी महिलाओं की मेहनत, कबाब से कुल्फ़ी तक का स्वाद — और साथ में वे गली-मोहल्ले, वह सियासत, वह पत्रकारिता और वह आम आदमी, जिसके बिना लखनऊ की दास्तान अधूरी है।

यह किताब उन युवाओं के लिए भी है, जो अपने शहर में सिर्फ़ रहते हैं, उसे जानते नहीं — और उन बुजुर्गों के लिए भी, जिनकी यादों का लखनऊ धीरे-धीरे बदल रहा है। अतीत को समझे बिना भविष्य का नक्शा नहीं बनता — इसीलिए इसका नाम है : दास्तान-ए-लखनऊ — अतीत से भविष्य तक।

अगर इन पन्नों को पढ़कर आपको अपने शहर से थोड़ी और मोहब्बत हो जाए, उसकी विरासत को बचाने का थोड़ा और जज़्बा जाग जाए — तो समझिएगा, यह दास्तान अपना काम कर गई।

— कामरान असद

संपादक, मानवाधिकार मीडिया

गोमती के किनारे — शहर की प्राचीन जड़ें

हर महान शहर की एक नदी होती है, जो उसकी माँ की तरह उसे गोद में पालती है। लखनऊ की माँ गोमती है। यह नदी पीलीभीत के पास गोमत ताल से निकलकर धीरे-धीरे बहती हुई अवध की धरती को सींचती है और लखनऊ के बीच से गुज़रते हुए एक सुंदर मोड़ लेती है। इसी मोड़ के किनारे बसा शहर सदियों से नदी की लहरों के साथ साँस लेता आया है। गोमती ने इस शहर को पानी दिया, रास्ता दिया, रोज़गार दिया और सबसे बढ़कर एक पहचान दी।

अवध का यह क्षेत्र भारतीय स्मृति में अत्यंत प्राचीन है। रामायण की परंपरा के अनुसार यह भूमि अयोध्या के विशाल राज्य का हिस्सा रही है, जहाँ से धर्म, मर्यादा और न्याय की कथाएँ पूरे देश में फैलीं। लखनऊ अयोध्या से अधिक दूर नहीं है, इसलिए यहाँ की मिट्टी में वह सांस्कृतिक सुगंध स्वाभाविक रूप से बसी हुई है। खेतों, बागों और क़स्बों से भरा यह इलाका हमेशा से उपजाऊ रहा। नदियों के पानी और मेहनतकश किसानों की मेहनत ने इसे अन्न और समृद्धि का क्षेत्र बनाया।

लखनऊ के नाम को लेकर एक सुंदर कथा प्रचलित है। लोक-कथाओं के अनुसार इस स्थान का संबंध भगवान राम के अनुज लक्ष्मण से जोड़ा जाता है और कहा जाता है कि यहाँ कभी लक्ष्मणपुरी या लखनपुरी नाम का बसावा था, जिससे आगे चलकर लखनऊ नाम बना। इतिहासकार इस विषय पर अलग-अलग मत रखते हैं, इसलिए इसे लोक-कथा के रूप में ही सुनना और समझना उचित है। फिर भी यह कथा बताती है कि आम लोगों के मन में यह शहर कितनी पुरानी और पवित्र स्मृतियों से जुड़ा हुआ है।

शहर के पुराने हिस्से में स्थित लक्ष्मण टीला इसी स्मृति का जीवंत प्रतीक माना जाता है। गोमती के किनारे ऊँचे टीले पर बसा यह स्थान सदियों से लोगों की आस्था और जिज्ञासा का केंद्र रहा है। बाद के काल में इसी टीले के आसपास धार्मिक स्थल बने और शहर का विस्तार होता गया। टीला केवल मिट्टी का ढेर नहीं है, वह लखनऊ के अतीत की परतों को अपने भीतर समेटे हुए है। हर पीढ़ी ने यहाँ आकर अपने समय की छाप छोड़ी और अतीत से अपना रिश्ता जोड़ा।

मध्यकाल में लखनऊ एक छोटे क़स्बे से धीरे-धीरे महत्वपूर्ण बसाव बनने लगा। यहाँ शेखों और पठानों के मोहल्ले बसे, जिन्होंने खेती, व्यापार और प्रशासन में अपनी जगह बनाई। सुरक्षा की दृष्टि से यहाँ क़िले और चौकियों का महत्व बढ़ा, क्योंकि गोमती के किनारे का यह रास्ता व्यापारियों और यात्रियों के लिए उपयोगी था। अलग-अलग समुदायों के आने से यहाँ की भाषा, खान-पान और रहन-सहन में विविधता आई। यही विविधता आगे चलकर लखनऊ की गंगा-जमुनी तहज़ीब की गहरी नींव बनी।

मुग़ल बादशाह अकबर के समय में इस क्षेत्र का महत्व और बढ़ गया। अकबर ने प्रशासन को व्यवस्थित करते हुए अवध को एक सूबा बनाया और लखनऊ उस सूबे का महत्वपूर्ण केंद्र बना। सरकारी अधिकारी, सैनिक, व्यापारी और कारीगर यहाँ आने लगे, जिससे बाज़ारों में रौनक बढ़ी और शहर का दायरा फैलने लगा। इसके बाद के मुग़ल काल में भी लखनऊ अवध की राजनीति और व्यापार में अपनी जगह बनाए रहा, हालाँकि तब राजधानी के रूप में इसका स्वर्ण काल आना अभी बाकी था।

इस प्रकार लखनऊ किसी एक दिन में बना हुआ शहर नहीं है। यह गोमती की लहरों, प्राचीन कथाओं, किसानों के खेतों, शेखों-पठानों के मोहल्लों और मुगल प्रशासन की व्यवस्था से धीरे-धीरे गढ़ा गया शहर है। इसकी जड़ें जितनी गहरी हैं, उसकी शाखाएँ उतनी ही फैली हुई हैं। जब हम आगे नवाबों के लखनऊ की कहानी पढ़ेंगे, तो हमें याद रखना चाहिए कि उस शान की बुनियाद में यही पुरानी मिट्टी, यही नदी और यही आम लोग हैं, जिन्होंने शहर को शहर बनाया।

दास्तान का सार

लखनऊ की कहानी गोमती के किनारे से शुरू होती है, जहाँ प्राचीन परंपरा, लोक-कथाएँ और मध्यकालीन बसाव मिलकर शहर की नींव रखते हैं। अकबर के समय अवध सूबे का केंद्र बनकर यह छोटा क़स्बा भविष्य की राजधानी बनने की राह पर चल पड़ा।

अवध की नींव — सआदत ख़ान से शुजाउद्दौला तक

अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत में मुगल साम्राज्य कमज़ोर पड़ रहा था। दिल्ली का दरबार षड्यंत्रों में उलझा था और सूबों के अधिकारी अपनी स्वतंत्र राह खोज रहे थे। ऐसे ही समय में सआदत ख़ान बुरहानुल-मुल्क नाम के एक योग्य और महत्वाकांक्षी सरदार ने अवध की ओर रुख किया। वे मूल रूप से ईरान से आए परिवार से थे और अपनी योग्यता के बल पर आगे बढ़े थे। सन् 1722 में वे अवध के सूबेदार नियुक्त हुए और यहीं से एक नए दौर की शुरुआत हुई।

सआदत ख़ान ने अवध में व्यवस्था स्थापित करने को सबसे पहला काम माना। उन्होंने बागी ज़मींदारों को नियंत्रित किया, लगान की व्यवस्था सुधारी और प्रशासन को मज़बूत बनाया। उनकी राजधानी फैज़ाबाद बनी, जो अयोध्या के पास गोमती और सरयू क्षेत्र से जुड़ा महत्वपूर्ण स्थान था। धीरे-धीरे वे नाम मात्र के लिए दिल्ली के अधीन रहे, पर व्यवहार में अवध एक स्वतंत्र नवाबी राज्य बनता गया। सआदत ख़ान के बाद उनके भतीजे और दामाद सफ़्दरजंग नवाब बने, जिन्होंने इस नींव को और मज़बूती दी।

सफ़दरजंग केवल अवध के नवाब नहीं थे, वे दिल्ली में मुग़ल बादशाह के वज़ीर भी बने। इससे अवध का महत्व पूरी दिल्ली की राजनीति में बढ़ गया। सफ़दरजंग के समय में फ़ैज़ाबाद में दरबार, बाज़ार और इमारतों का विकास हुआ और अवध की सेना व ख़ज़ाना सुदृढ़ हुए। दिल्ली की राजनीति की उथल-पुथल के बीच भी उन्होंने अवध को अपेक्षाकृत स्थिर रखा। उनके बाद उनके पुत्र शुजाउद्दौला अवध के नवाब बने, जिनके समय में अवध को इतिहास की एक निर्णायक परीक्षा से गुज़रना पड़ा।

शुजाउद्दौला के समय में बंगाल की राजनीति तेज़ी से बदल रही थी। अंग्रेज़ ईस्ट इंडिया कंपनी व्यापार से आगे बढ़कर सत्ता की लड़ाई में उतर चुकी थी। मीर क़ासिम और मुग़ल बादशाह शाह आलम द्वितीय के साथ मिलकर शुजाउद्दौला ने कंपनी का सामना किया, पर सन् 1764 में बक्सर की लड़ाई में इस संयुक्त मोर्चे को हार का सामना करना पड़ा। बक्सर की यह लड़ाई केवल एक युद्ध नहीं थी, यह पूरे उत्तर भारत के भविष्य को बदलने वाला मोड़ साबित हुई।

बक्सर के बाद सन् 1765 में इलाहाबाद की संधि हुई। इस संधि के बाद अवध अंग्रेज़ों के प्रभाव के घेरे में आ गया। नवाब को भारी रकम देनी पड़ी, कुछ क्षेत्र भी गँवाने पड़े और कंपनी की सेना की उपस्थिति का दबाव बढ़ता गया। फिर भी यह समझना ज़रूरी है कि अवध भीतर से पूरी तरह टूटा नहीं था। उसके पास उपजाऊ धरती, बड़ा राजस्व, मज़बूत दरबार और समृद्ध शहर थे। राजनीतिक स्वतंत्रता पर साया गहरा हुआ, पर आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन फलता-फूलता रहा।

शुजाउद्दौला ने हार के बाद भी फ़ैज़ाबाद को सुंदर राजधानी बनाने का काम जारी रखा। बाग़, महल, बाज़ार और दरबारी रौनक से फ़ैज़ाबाद चमकने लगा। दिल्ली से आए कई अमीर, कवि, कलाकार और कारीगर अवध की ओर आकर्षित हुए, क्योंकि यहाँ उन्हें सम्मान और रोज़गार मिल रहा था। अवध धीरे-धीरे उत्तर भारत की राजनीति के साथ-साथ संस्कृति का भी बड़ा केंद्र बनने लगा। इसी वातावरण ने आगे चलकर लखनऊ के स्वर्ण युग के लिए ज़मीन तैयार की।

सआदत ख़ान से शुजाउद्दौला तक की यह यात्रा हमें बताती है कि राज्य केवल तलवार से नहीं बनते, व्यवस्था, राजस्व और दूरदृष्टि से बनते हैं। इन नवाबों ने कठिन समय में अवध को संभाला, उसे एक पहचान दी और उसकी सीमाओं को मज़बूत किया। साथ ही बक्सर और इलाहाबाद संधि ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेज़ों का बढ़ता साया भविष्य में और गहरा होगा। अवध की दास्तान में समृद्धि और संकट अब साथ-साथ चलने वाले थे।

दास्तान का सार

1722 में सआदत ख़ान ने अवध की स्वतंत्र नवाबी की नींव रखी, जिसे सफ़्दरजंग और शुजाउद्दौला ने मज़बूत किया। 1764 के बक्सर और 1765 की इलाहाबाद संधि के बाद अवध अंग्रेज़ी प्रभाव में आया, फिर भी भीतर से समृद्ध और सांस्कृतिक रूप से जीवंत बना रहा।

आसफ़ुद्दौला का लखनऊ — राजधानी और बड़ा इमामबाड़ा

सन् 1775 में नवाब आसफ़ुद्दौला ने एक ऐसा निर्णय लिया जिसने इतिहास की दिशा बदल दी। उन्होंने अवध की राजधानी फैज़ाबाद से हटाकर लखनऊ बना दी। इस निर्णय के पीछे राजनीतिक कारण भी थे और अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने की इच्छा भी। लखनऊ आकर नवाब ने नए महल, बाज़ार, मोहल्ले और इमारतें बनवाना शुरू किया। देखते ही देखते गोमती किनारे का यह शहर दरबारियों, कवियों, कारीगरों और व्यापारियों से भर गया और अवध का नया हृदय बन गया।

आसफ़ुद्दौला का लखनऊ केवल सत्ता का केंद्र नहीं था, वह रोज़गार और रौनक का शहर बन रहा था। दिल्ली की अव्यवस्था से परेशान अनेक परिवार यहाँ आए और उन्हें यहाँ शांति मिली। नवाब की उदारता के कारण कलाकारों और विद्वानों को संरक्षण मिला। शहर में नई हवेलियाँ, मस्जिदें, इमामबाड़े और बाज़ार बने। मच्छी भवन और अन्य क़िला-परिसर के आसपास प्रशासन का केंद्र विकसित हुआ। लखनऊ अब क्रस्वे से निकलकर सचमुच एक राजधानी की शान के साथ खड़ा होने लगा था।

सन् 1784 में अवध में भयंकर अकाल पड़ा। फ़सलें सूख गईं, अनाज महँगा हो गया और आम लोग भारी संकट में आ गए। ऐसे समय में आसफ़ुद्दौला ने राहत के लिए एक विशाल निर्माण कार्य शुरू करवाया, जिससे हज़ारों लोगों को काम और मज़दूरी मिल सके। इसी संकल्प से बड़ा इमामबाड़ा बनना शुरू हुआ। यह केवल एक धार्मिक इमारत नहीं था, यह भूख के समय में जनता को सहारा देने का साधन भी था, इसलिए इसे रोज़गार के लिए बनाया गया अनोखा स्मारक कहा जाता है।

बड़े इमामबाड़े के वास्तुकार किफ़ायतुल्लाह थे, जिनकी कल्पना और हुनर ने इस इमारत को अद्भुत बना दिया। इसका विशाल केंद्रीय कक्ष बिना किसी खंभे के सहारे खड़ा है और उस समय की इंजीनियरिंग का कमाल माना जाता है। इमामबाड़े के ऊपर बनी भूल-भुलैया अपनी गलियों और सीढ़ियों के जाल के कारण विश्व प्रसिद्ध हुई। छत तक जाने के रास्ते, दीवारों के भीतर की सुरंगों और आवाज़ पहुँचाने की व्यवस्था आज भी देखने वालों को हैरान कर देती है।

उसी दौर में, सन् 1784 के आसपास, रूमी दरवाज़ा भी बनवाया गया, जो आज लखनऊ की सबसे पहचानी जाने वाली पहचान है। ऊँचा, भव्य और कलात्मक यह दरवाज़ा अवध की शान का द्वार माना जाता है। इसकी बनावट पर तुर्की के प्रसिद्ध द्वारों की छाप बताई जाती है, इसीलिए इसका नाम रूमी पड़ा। बड़ा इमामबाड़ा, रूमी दरवाज़ा और आसपास की इमारतों ने मिलकर लखनऊ को वह रूप दिया, जिसे देखकर हर यात्री कह उठता था कि यह शहर सचमुच नवाबों का शहर है।

नवाब आसफ़ुद्दौला की दरियादिली को लेकर अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। प्रचलित कथाओं में कहा जाता है कि वे ज़रूरतमंद को खाली हाथ लौटाना पसंद नहीं करते थे और अकाल के समय दिन में निर्माण कार्य के साथ रात में भी लोगों की सहायता के उपाय खोजे जाते थे। इन कथाओं के हर विवरण को ऐतिहासिक प्रमाण मानना ठीक नहीं, पर इनसे यह अवश्य समझ आता है कि जनता के मन में नवाब की छवि एक रहमदिल शासक की थी, जो संकट में अपनी प्रजा के साथ खड़ा होता था।

आसफ़ुद्दौला के काल में लखनऊ ने वह बुनियाद पाई, जिस पर आगे की पूरी नवाबी शान खड़ी हुई। राजधानी बनना, बड़ा इमामबाड़ा और रूमी दरवाज़ा केवल इमारतों की कहानी नहीं है, यह एक शासक के उस विचार की कहानी है जिसमें निर्माण का अर्थ केवल शोभा नहीं, जनता का पेट भरना भी था। यही कारण है कि सदियाँ बीत जाने के बाद भी लखनऊ के लोग आसफ़ुद्दौला को सम्मान से याद करते हैं और उनका बनाया शहर आज भी गर्व से सिर उठाए खड़ा है।

दास्तान का सार

1775 में आसफ़ुद्दौला ने लखनऊ को राजधानी बनाया और 1784 के अकाल में राहत व रोज़गार के लिए बड़ा इमामबाड़ा बनवाया। किफ़ायतुल्लाह की बनाई भूल-भुलैया और रूमी दरवाज़े के साथ लखनऊ नवाबी शान का प्रतीक बन गया।

नवाबी शान — दरबार, नज़ाकत और 'पहले आप'

लखनऊ की असली पहचान उसकी इमारतों से भी अधिक उसकी तहज़ीब है। नवाबी काल में यहाँ एक ऐसा दरबार विकसित हुआ, जहाँ सत्ता के साथ साहित्य, संगीत और शिष्टाचार को बराबर सम्मान मिलता था। दरबार में बात करने का सलीक़ा, बैठने का ढंग और मेहमान की इज़ज़त, हर चीज़ का एक नियम था। यह दिखावा मात्र नहीं था, यह जीवन जीने की कला थी। इसी कला ने लखनऊ को पूरे देश की सांस्कृतिक राजधानी बना दिया।

मुशायरे और महफ़िलें इस शहर की आत्मा थीं। शाम होते ही कहीं शायर अपना कलाम सुना रहे होते, कहीं संगीत की महफ़िल जमी होती और कहीं कथा-कहानी का दौर चलता। उर्दू शायरी को लखनऊ में विशेष नफ़ासत मिली और यहाँ के शायरों ने भाषा को मिठास और गहराई दी। कवियों का सम्मान केवल दरबार तक सीमित नहीं था, आम मोहल्लों में भी शेर-ओ-शायरी की चर्चा होती थी। साहित्य यहाँ किताबों से निकलकर रोज़मर्रा की बातचीत में घुल गया था।

लखनऊ की नज़ाकत और नफ़ासत उसकी भाषा में सबसे स्पष्ट दिखाई देती है। यहाँ गाली तो दूर, ऊँची आवाज़ में बात करना भी बदतहज़ीबी माना जाता था। 'पहले आप' की संस्कृति इसी भावना का सबसे सुंदर उदाहरण है। गाड़ी में पहले दूसरे को चढ़ने देना, दरवाज़े पर पहले मेहमान को आगे करना और बातचीत में पहले सामने वाले को सम्मान देना, यही लखनऊ था। इस छोटे से वाक्य में पूरे शहर का बड़ा दिल छुपा हुआ था।

पहनावे में भी वही शान झलकती थी। अँगरखा, शेरवानी, कुर्ता-पायजामा और सिर पर सुंदर टोपी या पगड़ी, हर वस्त्र सलीके से पहना जाता था। चिकनकारी की बारीक कढ़ाई ने लखनऊ के कपड़ों को देश-विदेश में पहचान दी। महिलाओं के वस्त्रों में भी नफ़ासत और रंगों का मेल देखते ही बनता था। लखनऊ का इंसान केवल अच्छा पहनता नहीं था, वह अपने वस्त्र, चाल और व्यवहार से एक पूरी सभ्यता का परिचय देता था।

दस्तरख़ान लखनऊ की शान का दूसरा बड़ा अध्याय है। यहाँ खाना केवल पेट भरने का काम नहीं था, वह मेहमाननवाज़ी का उत्सव था। बिरयानी, क़ोरमा, कबाब, शीरमाल और अनेक मिठाइयों की सुगंध बाज़ारों और घरों में फैली रहती थी। बावर्ची अपने हुनर पर गर्व करते थे और एक-एक मसाले का संतुलन साधते थे। पान की गिलौरियाँ, ख़ासदान और भोजन के बाद की महफ़िल, ये सब मिलकर लखनऊ के स्वाद को एक यादगार अनुभव बना देते थे।

उस दौर में दूर-दूर से आए यात्रियों और लेखकों ने लखनऊ की इस रौनक का वर्णन अपने यात्रा-वृत्तांतों में किया है। उनके विवरणों का सार यही है कि लखनऊ की गलियों में संपन्नता, कला और शिष्टाचार एक साथ चलते दिखाई देते थे। दिल्ली के उजड़ने के बाद अनेक लोगों को यहाँ नया आश्रय मिला, इसलिए लखनऊ केवल अवध की नहीं, पूरे उत्तर भारत की सांस्कृतिक आशा बन गया। फिर भी इस चमक के पीछे आम कारीगर, मज़दूर और छोटे दुकानदार ही शहर की असली ताक़त थे।

आज समय बदल गया है, दरबार नहीं रहे और नवाबों का दौर इतिहास बन गया, पर लखनऊ की तहज़ीब अभी भी उसकी गलियों, भाषा और मेहमाननवाज़ी में जीवित है। किसी अजनबी को रास्ता बताने का ढंग, बुजुर्गों के प्रति आदर और बातचीत की मिठास आज भी पुराने लखनऊ की याद दिलाती है। नवाबी शान का सबसे बड़ा सबक़ यही है कि बड़ा होना केवल धन से नहीं होता, व्यवहार, भाषा और दूसरों को दिया गया सम्मान ही किसी शहर को सचमुच महान बनाता है।

दास्तान का सार

नवाबी लखनऊ की शान दरबार, मुशायरे, नज़ाकत और 'पहले आप' की तहज़ीब में बसती थी। अँगरखा-टोपी, चिकनकारी और भव्य दस्तरख़्वान के साथ यह शहर देश की सांस्कृतिक राजधानी बन गया, जिसकी मिठास आज भी जीवित है।

वाजिद अली शाह — कलाकार नवाब और विलय का दर्द

नवाब वाजिद अली शाह सन् 1847 में अवध के तख्त पर बैठे और वे इस राज्य के अंतिम नवाब साबित हुए। वे साधारण शासकों से अलग थे। उन्हें कविता, संगीत, नृत्य और नाटक से गहरा प्रेम था और वे स्वयं भी कलाकार थे। उन्होंने कविताएँ लिखीं, संगीत की महफ़िलें सजाई और नाट्य प्रस्तुतियों को नया रूप दिया। उनके दरबार में कला केवल मनोरंजन नहीं थी, वह लखनऊ की पहचान और उसकी आत्मा का विस्तार थी।

वाजिद अली शाह के नाम से जुड़ी 'बाबुल मोरा' जैसी ठुमरी लोक-स्मृति में आज भी जीवित है और विदाई के दर्द का प्रतीक बन गई है। उनके द्वारा विकसित रहस और नाट्य परंपरा ने अनेक कलाकारों को मंच दिया। क़ैसरबाग़ की बारादरी और उसके बाग़-महल उनके कलात्मक स्वप्न का सबसे सुंदर उदाहरण बने, जहाँ मेलों, नाटकों और महफ़िलों से परिसर गुलज़ार रहता था। नवाब का मन कला में रमता था, पर उसी समय राज्य पर अंग्रेज़ों का दबाव लगातार बढ़ रहा था।

अंग्रेज़ ईस्ट इंडिया कंपनी बहुत समय से अवध की उपजाऊ धरती और बड़े राजस्व पर नज़र रखे हुए थी। इससे पहले भी संधियों के माध्यम से अवध के क्षेत्र और अधिकार सीमित किए जा चुके थे। गवर्नर-जनरल लॉर्ड डलहौज़ी के समय में अवध के प्रशासन पर कुशासन के आरोप लगाए गए और इन्हीं आरोपों के आधार पर विलय का निर्णय तैयार हुआ। कुछ इतिहासकार प्रशासनिक कमियों की ओर संकेत करते हैं, तो कई यह भी मानते हैं कि आरोपों को बढ़ा-चढ़ाकर विलय का बहाना बनाया गया।

सन् 1856 में अवध को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया गया। वाजिद अली शाह ने रक्तपात से बचने का मार्ग चुना और बिना युद्ध किए शांति से लखनऊ छोड़ दिया। एक कलाकार नवाब के लिए अपनी राजधानी, अपने महल और अपने लोगों से बिछड़ना असहनीय पीड़ा थी, पर उन्होंने शहर को लड़ाई की आग से बचाना अधिक उचित समझा। लखनऊ की जनता अपने प्रिय नवाब की विदाई पर भावुक हो उठी और यह क्षण शहर की स्मृति में गहरे दर्द के साथ दर्ज हो गया।

लखनऊ छोड़कर वाजिद अली शाह कोलकाता के मटियाबुर्ज पहुँचे, जहाँ उन्हें निर्वासन का जीवन बिताना पड़ा। वहाँ भी उन्होंने अपने चारों ओर एक छोटा लखनऊ बसा लिया। बाग़, इमारतें, संगीत की महफ़िलें, शायरी, पशु-पक्षियों का संग्रह और लखनवी खान-पान व पहनावा, सब कुछ उन्होंने नए स्थान पर फिर से जीवित करने का प्रयास किया। मटियाबुर्ज में रहने वाले अनेक साथी और कलाकार भी लखनऊ की तहज़ीब को वहाँ बचाए रखे। निर्वासन में भी उनकी पहचान एक कलाकार की ही रही।

सन् 1887 में कोलकाता में ही वाजिद अली शाह का निधन हो गया। वे अवध लौटने की इच्छा पूरी नहीं कर सके, पर लखनऊ उन्हें कभी भूल नहीं पाया। क़ैसरबाग़ की टूटी शान, शहर की पुरानी हवेलियाँ और ठुमरी की धुनें आज भी उनके समय की याद दिलाती हैं। इतिहास उन्हें केवल अंतिम नवाब के रूप में नहीं देखता, वह उन्हें उस शासक के रूप में याद करता है जिसने अपने राज्य के अंतिम दिनों में भी कला और मानवीयता को नहीं छोड़ा।

वाजिद अली शाह की कहानी में वैभव और वेदना दोनों साथ चलते हैं। एक ओर संगीत, नाटक और कविता का उजाला है, दूसरी ओर विलय, निर्वासन और बिछड़ने का अँधेरा है। यही विरोधाभास लखनऊ को समझने की कुंजी है। इस शहर ने सबसे ऊँची शान भी देखी और सबसे गहरा दर्द भी सहा। नवाब की शांत विदाई के बाद शहर के मन में अंग्रेज़ों के प्रति जो असंतोष जमा हुआ, वही आगे चलकर 1857 की आग का एक बड़ा कारण बना।

दास्तान का सार

अंतिम नवाब वाजिद अली शाह कवि, संगीतकार और नाटककार थे, जिन्होंने क़ैसरबाग को कला का केंद्र बनाया। 1856 में कुशासन के आरोप पर अवध का विलय हुआ, वे शांति से कोलकाता गए और मटियाबुर्ज़ में छोटा लखनऊ बसाकर 1887 में वहीं चल बसे।

अध्याय 6

1857 की आग — बेगम हज़रत महल और जंग-ए-आज़ादी

अवध के विलय के बाद लखनऊ के लोगों के मन में गहरा असंतोष भर गया था। नवाब को हटाना, सैनिकों की नौकरियों और किसानों की ज़मीन पर बढ़ता दबाव, तथा अंग्रेज़ों की नीतियों से उपजा अविश्वास, सब मिलकर माहौल को गर्म कर रहे थे। सन् 1857 में जब देश के कई हिस्सों में सिपाही विद्रोह की चिंगारी भड़की, तो अवध उसकी सबसे बड़ी ज्वाला बना। लखनऊ केवल एक शहर नहीं रहा, वह आज़ादी की पहली बड़ी लड़ाई का प्रमुख मैदान बन गया।

जुलाई 1857 में क्रांतिकारियों और अवध के समर्थकों ने बिरजिस क़दर को नवाब घोषित किया। बिरजिस क़दर वाजिद अली शाह के पुत्र और कम आयु के थे, इसलिए शासन का वास्तविक नेतृत्व उनकी माँ बेगम हज़रत महल ने संभाला। बेगम ने असाधारण साहस और संगठन क्षमता का परिचय दिया। उन्होंने सिपाहियों, तालुक़दारों, ज़मींदारों और आम नागरिकों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया और लखनऊ को अंग्रेज़ों के विरुद्ध संघर्ष का मज़बूत केंद्र बनाया।

इस संघर्ष का सबसे प्रसिद्ध केंद्र रेज़िडेंसी बना, जहाँ अंग्रेज़ अधिकारी और उनके परिवार शरण लिए हुए थे। क्रांतिकारियों ने रेज़िडेंसी की घेराबंदी की, जो लगभग पाँच महीने तक चली। भीतर खाने-पीने और दवाओं की कमी थी, बाहर लगातार गोलाबारी और संघर्ष का माहौल था। रेज़िडेंसी की टूटी इमारतें आज भी उस घेराबंदी की गवाही देती हैं। यह लड़ाई केवल सेनाओं की नहीं थी, पूरे शहर के धैर्य, साहस और बलिदान की परीक्षा थी।

नवम्बर 1857 में सिकंदर बाग की लड़ाई इस संघर्ष का अत्यंत मार्मिक अध्याय बनी। यहाँ क्रांतिकारियों ने अंतिम साँस तक मोर्चा संभाला। इसी लड़ाई से ऊदा देवी का नाम अमर बलिदान के रूप में जुड़ा है, जिन्होंने पेड़ पर चढ़कर अंग्रेज़ सैनिकों का सामना किया और वीरगति पाई। ऊदा देवी का साहस बताता है कि 1857 की लड़ाई केवल राजाओं और सिपाहियों की नहीं थी, उसमें समाज के हर वर्ग की महिलाओं और आम लोगों की भी भागीदारी थी।

इस आंदोलन में मौलवी अहमदुल्लाह शाह जैसे नेताओं ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे अपने भाषणों और संगठन से लोगों में जोश भरते थे और विभिन्न मोर्चों पर संघर्ष को दिशा देते थे। हिंदू-मुस्लिम, सिपाही-किसान, तालुकदार और शहर के आम नागरिक, अनेक मतभेदों के बावजूद उस समय एक साझा लक्ष्य के लिए एकत्र हुए। यही एकता 1857 को केवल विद्रोह नहीं, जंग-ए-आज़ादी का स्वरूप देती है। लखनऊ की गलियों और मोहल्लों ने उस दौर में अभूतपूर्व भाईचारा देखा।

मार्च 1858 में बड़ी सैन्य शक्ति के साथ अंग्रेज़ों ने लखनऊ पर पुनः कब्ज़ा कर लिया। शहर को भारी विनाश, लूट और दमन का सामना करना पड़ा। अनेक मोहल्ले उजड़ गए, इमारतें टूट गईं और हज़ारों लोग अपने घरों से बेघर हुए। बेगम हज़रत महल अंत तक संघर्ष करती रहीं, पर स्थिति बदल जाने पर उन्हें अपने पुत्र के साथ नेपाल जाना पड़ा। वहाँ शरण का जीवन कठिन था, फिर भी उन्होंने अपने सम्मान और अवध के अधिकार की बात से समझौता नहीं किया।

सन् 1879 में काठमांडू में बेगम हज़रत महल का निधन हो गया। वे अपने लखनऊ लौट नहीं सकीं, पर उनका नाम शहर के हृदय में सदा के लिए बस गया। 1857 ने लखनऊ को जला तो दिया, पर उसकी आत्मा को और मज़बूत कर दिया। बेगम का साहस, ऊदा देवी का बलिदान और हज़ारों अनाम लोगों का संघर्ष आज भी हमें सिखाता है कि आज़ादी केवल शासकों से नहीं मिलती, वह आम लोगों के हौसले और एकता से जन्म लेती है।

दास्तान का सार

विलय के असंतोष से भड़की 1857 की लड़ाई में बेगम हज़रत महल ने बिरजिस क़द्र के नाम पर लखनऊ का नेतृत्व किया। रेज़िडेंसी की घेराबंदी, सिकंदर बाग़ में ऊदा देवी का बलिदान और मार्च 1858 का पुनः कब्ज़ा इस अध्याय की मुख्य कड़ियाँ हैं; बेगम का निधन 1879 में काठमांडू में हुआ।

पत्थरों में इतिहास — ऐतिहासिक इमारतें और धरोहर

लखनऊ को समझना हो तो उसकी गलियों के साथ-साथ उसकी इमारतों को भी पढ़ना होगा। यहाँ हर मेहराब, हर गुम्बद और हर बुर्ज किसी दौर की गवाही देता है। ये इमारतें केवल ईंट-पत्थर का ढाँचा नहीं हैं, ये उस तहज़ीब के दस्तावेज़ हैं जिसने इस शहर को अदब, नज़ाकत और शान का दूसरा नाम दिया। जब शाम की रोशनी इन दीवारों पर पड़ती है तो लगता है जैसे अतीत आज भी साँस ले रहा है और आने वाली पीढ़ियों से कुछ कहना चाहता है।

शहर की धरोहरों में सबसे पहला नाम बड़े इमामबाड़े का आता है, जिसे नवाब आसफ़-उद-दौला ने अकाल के कठिन वर्षों में बनवाया था ताकि लोगों को रोज़गार भी मिले और शहर को एक अज़ीम इमारत भी। इसका विशाल केन्द्रीय कक्ष बिना खम्भों के टिका है, जो उस समय की इंजीनियरिंग का कमाल माना जाता है। उसी परिसर में भूल-भुलैया की भूलभुलैया-सी गलियाँ हर सैलानी को हैरान करती हैं, और शाही बावली की ठंडी सीढ़ियाँ गर्मी में भी सुकून देती हैं। यह पूरा परिसर लखनऊ की पहचान का दिल है।

हुसैनबाद की ओर बढ़ें तो छोटा इमामबाड़ा अपनी सुनहरी सजावट और नाजूक कारीगरी से मन मोह लेता है। इसे 1838-39 में नवाब मुहम्मद अली शाह ने बनवाया था, इसलिए इसे हुसैनबाद इमामबाड़ा भी कहा जाता है। इसके शीशे, झाड़-फ़ानूस और सुनहरे गुम्बद इसकी शान बढ़ाते हैं। पास ही खड़ा रूमी दरवाज़ा, जो 1784 में बना, लखनऊ का प्रवेश-द्वार और सबसे पहचाना जाने वाला प्रतीक है। इसे देखे बिना लखनऊ की कोई तस्वीर पूरी नहीं मानी जाती।

गोमती के किनारे फैला रेज़िडेंसी परिसर एक दूसरा ही इतिहास सुनाता है। लगभग 1800 के आस-पास बना यह परिसर 1857 के संग्राम का साक्षी रहा। आज भी इसकी टूटी दीवारों पर गोलियों और गोलों के निशान साफ़ देखे जा सकते हैं, जो उस संघर्ष की याद को ज़िंदा रखते हैं। इसी दौर से जुड़ा सिकंदर बाग भी है, जहाँ 1857 की लड़ाई की कहानियाँ आज भी स्थानीय स्मृति में बसी हैं। ये खंडहर हमें बताते हैं कि आज़ादी की कीमत कितनी भारी थी।

नवाबी शान की झलक छत्तर मंज़िल में दिखती है, जिसकी छतरीनुमा बनावट ने इसे यह नाम दिया। कभी यह नवाबों और बाद में महत्वपूर्ण लोगों का ठिकाना रही। क़ैसरबाग़ का परिसर वाजिद अली शाह के दौर की रंगीन दुनिया को याद दिलाता है, जहाँ बाग़, बारादरी और महल एक साथ बसाए गए थे। दिलकुशा कोठी, अपने बाग़ों के बीच बनी, शिकार और सैर का स्थान रही और 1857 के घटनाक्रम से भी जुड़ी। ये इमारतें लखनऊ के बदलते सियासी रंग को दर्शाती हैं।

हुसैनाबाद का घंटाघर 1881 में बना और लगभग 67 मीटर ऊँचा यह घंटाघर भारत के सबसे ऊँचे घंटाघरों में गिना जाता है। इसकी आवाज़ कभी पूरे पुराने शहर में समय का अहसास कराती थी। दूसरी ओर ला मार्टिनियर है, जिसे फ़्रांसीसी अधिकारी क्लॉड मार्टिन की स्मृति से जोड़ा जाता है और जो 1845 में विद्यालय के रूप में खुला। गोमती किनारे खड़ी यह अनोखी इमारत शिक्षा की धरोहर भी है और वास्तुकला का नमूना भी। शहर की हर इमारत अपने अंदाज़ में अलग कहानी कहती है।

आज सबसे बड़ी ज़रूरत इन धरोहरों के संरक्षण की है। बढ़ता प्रदूषण, अव्यवस्थित निर्माण, नमी और लापरवाही इन अनमोल इमारतों को धीरे-धीरे कमज़ोर कर रहे हैं। केवल सरकारी प्रयास काफ़ी नहीं होंगे, शहर के नागरिकों को भी इन्हें अपनी पहचान मानकर इनकी देखभाल में भागीदार बनना होगा। यदि हमने आज इन पत्थरों की आवाज़ नहीं सुनी, तो कल आने वाली पीढ़ियाँ लखनऊ को केवल किताबों में पढ़ेंगी, आँखों से नहीं देख पाएँगी। धरोहर बचाना दरअसल अपने भविष्य को बचाना है।

दास्तान का सार

बड़ा इमामबाड़ा से रेज़िडेंसी तक लखनऊ की हर इमारत नवाबी शान, संघर्ष और कारीगरी की जीवित गवाही है। इन धरोहरों का संरक्षण केवल प्रशासन की नहीं, हर लखनऊवासी की साझा ज़िम्मेदारी है।

गंगा-जमुनी तहज़ीब — साझा विरासत की आत्मा

लखनऊ की असली ताक़त उसकी इमारतों से भी बढ़कर उसकी गंगा-जमुनी तहज़ीब है। गंगा और जमुना जैसे दो अलग धाराएँ मिलकर एक हो जाती हैं, वैसे ही यहाँ हिन्दू और मुसलमान सदियों से एक ही मोहल्ले, एक ही बाज़ार और एक ही दुख-सुख में साथ जीते आए हैं। यह तहज़ीब किसी किताब में लिखी परिभाषा नहीं, रोज़मर्रा की ज़िंदगी में घुली-मिली वह ख़ुशबू है जो इस शहर को पूरे देश में अलग पहचान देती है।

पुराने लखनऊ की गलियों में आज भी यह नज़ारा आम है कि एक ही मोहल्ले में मंदिर, मस्जिद और इमामबाड़ा साथ-साथ खड़े हैं। सुबह मंदिर की घंटी और अज़ान की आवाज़ एक ही हवा में घुलती है। दुकानदार एक-दूसरे के त्योहारों पर मिठाई भेजते हैं, बच्चे एक ही मैदान में खेलते हैं और बुजुर्ग एक ही चबूतरे पर बैठकर शहर की बातें करते हैं। धर्म यहाँ दीवार नहीं बना, वह पुल बना जिसने दिलों को जोड़ा और मोहल्लों को एक परिवार जैसा बना दिया।

बड़ा मंगल का मेला इस साझा आस्था का सबसे सुंदर उदाहरण है। ज्येष्ठ मास के मंगलवारों को पूरा शहर हनुमान भक्ति में डूब जाता है। अलीगंज के हनुमान मंदिर की परंपरा से जुड़ा यह पर्व अब केवल एक मंदिर तक सीमित नहीं रहा, जगह-जगह भंडारे लगते हैं, शरबत और प्रसाद बँटता है। इन भंडारों में हर धर्म और हर वर्ग के लोग सेवा करते और प्रसाद ग्रहण करते दिखाई देते हैं। श्रद्धा यहाँ किसी एक समुदाय की जागीर नहीं, पूरे शहर का साझा उत्सव बन जाती है।

इसी तरह मुहर्रम के दिनों में भी लखनऊ का रंग साझा होता है। ताज़ियों और अलम के जुलूसों में केवल एक समुदाय नहीं, अनेक मोहल्लों के लोग सम्मान और सहभागिता के साथ शामिल होते रहे हैं। कई स्थानों पर हिन्दू परिवार भी सबील लगाते हैं और जुलूस के लिए मार्ग में सहयोग करते हैं। यह परंपरा बताती है कि ग़म हो या खुशी, लखनऊ ने हमेशा उसे बाँटना सीखा है। साझा शिरकत ने शहर के सामाजिक ताने-बाने को मज़बूत किया है।

होली की रंग-गुलाल भरी सुबह हो या ईद की सेवइयों वाली शाम, लखनऊ में गले मिलना रस्म से बढ़कर स्वभाव है। होली पर मुसलमान मित्र रंग खेलने आते हैं और ईद पर हिन्दू परिवार सेवइयाँ खाने और मुबारकबाद देने पहुँचते हैं। नवाब वाजिद अली शाह के नाटकों और रहस में कृष्ण-लीला का मंचन इसी भावना का शाही प्रमाण है, जहाँ एक मुसलमान शासक ने भक्ति-भाव को पूरे सम्मान से अपने दरबार की संस्कृति में स्थान दिया था।

यह तहज़ीब केवल त्योहारों तक सीमित नहीं है। भाषा, पहनावा, खान-पान और अदब में भी साझापन झलकता है। उर्दू और हिन्दी यहाँ एक-दूसरे की प्रतिद्वंद्वी नहीं, बहनें बनकर रही हैं। कुर्ता-पायजामा, शेरवानी और साड़ी एक ही बाज़ार में बिकते हैं, कबाब और खीर एक ही दस्तरख़्वान पर सजते हैं। शायर, कथाकार, कारीगर और दुकानदार, सबने मिलकर एक ऐसा माहौल बनाया जहाँ नफ़ासत का अर्थ था दूसरे का सम्मान करना और उसकी भावना का ख़याल रखना।

समय बदला, शहर फैला, नई कॉलोनियाँ बसीं और जीवन की रफ्तार तेज़ हो गई, फिर भी गंगा-जमुनी तहज़ीब आज भी लखनऊ में ज़िंदा है। आज भी किसी मुसीबत में मोहल्ला धर्म देखकर नहीं, इंसान देखकर खड़ा होता है। नई पीढ़ी को यह विरासत कहानियों से नहीं, अपने आचरण से आगे बढ़ानी होगी। यदि यह साझा आत्मा बची रही तो लखनऊ केवल एक ऐतिहासिक शहर नहीं रहेगा, वह देश के लिए भाईचारे की सबसे सुंदर मिसाल बना रहेगा।

दास्तान का सार

बड़ा मंगल से मुहर्रम और होली-ईद तक, लखनऊ की गंगा-जमुनी तहज़ीब साझा जीवन की वह आत्मा है जो मंदिर, मस्जिद और इमामबाड़े को एक ही मोहल्ले में जोड़ती है। यह परंपरा आज भी शहर की सबसे बड़ी ताक़त है।

अदब का शहर — साहित्य और शायरी

लखनऊ को यदि अदब का शहर कहा जाता है तो यह केवल शौक की बात नहीं, सदियों की साधना का परिणाम है। यहाँ शायरी महफ़िलों की शान थी, किस्सागोई शामों का सहारा और किताबें घरों की इज़्ज़त। नवाबों के दरबार से लेकर चौक की छोटी दुकानों तक, शब्दों का सम्मान हर जगह मिलता था। जिस शहर में बात करने का सलीक़ा ही शायरी जैसा हो, वहाँ साहित्य का फूलना-फलना स्वाभाविक था। यही कारण है कि उर्दू और हिन्दी, दोनों का साहित्य यहाँ गहराई से पनपा।

उर्दू शायरी के महान नाम मीर तक्ऱी मीर का लखनऊ आना इस इतिहास का महत्वपूर्ण मोड़ है। वे 1782 में दिल्ली से लखनऊ आए और नवाब आसफ़-उद-दौला के दरबार से जुड़े। ख़ुदा-ए-सुखन कहे जाने वाले मीर ने अपने जीवन का अंतिम समय यहीं बिताया और 1810 में यहीं उनका निधन हुआ। उनकी ग़ज़लों में दर्द, प्रेम और मानवीय गरिमा का ऐसा संगम है जो आज भी पाठकों को भीतर तक छूता है। मीर का लखनऊ में होना शहर के साहित्यिक दर्जे को और ऊँचा कर गया।

लखनऊ की धरती पर मरसिया अपने शिखर पर पहुँचा। मीर अनीस और मिर्ज़ा दबीर ने मरसिया को केवल धार्मिक विलाप न रखकर भाषा, चित्रण और भाव का महान साहित्य बना दिया। उनकी रचनाओं में कर्बला की कथा के साथ मानवीय संवेदना, प्रकृति-वर्णन और नाटकीयता का अद्भुत मेल मिलता है। अनीस और दबीर के बीच तुलना की चर्चा उस दौर की महफ़िलों में आम थी, पर दोनों ने मिलकर लखनऊ को मरसिया का विश्व-प्रसिद्ध केन्द्र बना दिया, जिसकी गूँज आज भी मुहर्रम की मजलिसों में सुनी जाती है।

ग़ज़ल की दुनिया में लखनऊ स्कूल ऑफ़ उर्दू शायरी का अपना अलग अंदाज़ रहा। शेख़ इमाम बख़्श नासिख़ और ख़्वाजा हैदर अली आतिश के बीच हुई साहित्यिक बहस और प्रतिस्पर्धा ने भाषा की सफ़ाई, मुहावरे और बारीकी पर विशेष ध्यान दिलाया। नासिख़ की विद्वता और आतिश की सरलता व गहराई ने दो अलग राहें बनाईं, जिनसे अनेक शायर प्रभावित हुए। इन बहसों ने शायरी को दरबार से निकालकर विद्वानों और आम श्रोताओं की गंभीर चर्चा का विषय बना दिया।

गद्य में रतननाथ सरशार का उपन्यास फ़साना-ए-आज़ाद एक मील का पत्थर है, जो 1878 से अवध अख़बार में धारावाहिक रूप में छपना शुरू हुआ। इसमें लखनऊ के मोहल्ले, मेलों, महफ़िलों और आम लोगों की ज़िंदगी हास्य और व्यंग्य के साथ जीवंत हो उठती है। अब्दुल हलीम शरर ने गुज़िश्ता लखनऊ लिखकर उस बीते दौर की तहज़ीब को दस्तावेज़ी रूप दिया, जिससे आने वाली पीढ़ियाँ उस जीवन-शैली को समझ सकीं। इन रचनाओं ने शहर को साहित्य का पात्र भी बनाया और लेखक भी।

हिन्दी साहित्य से भी लखनऊ का गहरा रिश्ता रहा। प्रेमचंद का जीवन और लेखन अवध की मिट्टी से गहराई से जुड़ा रहा, उनकी कहानियों में यहाँ के किसान और आम आदमी की आवाज़ सुनाई देती है। भगवती चरण वर्मा, यशपाल जैसे लेखकों का जीवन और सृजन लखनऊ से जुड़ा, यशपाल ने तो यहाँ रहकर साहित्य और विचार दोनों को दिशा दी। अमृतलाल नागर ने चौक की गलियों को अपने साहित्य का केन्द्र बनाया, बूँद और समुद्र जैसी रचनाओं की पृष्ठभूमि में यही लखनऊ धड़कता दिखाई देता है।

आज भी लखनऊ में साहित्यिक साँसें तेज़ हैं। मुशायरे, कवि सम्मेलन, पुस्तक मेले, साहित्य उत्सव और छोटी-छोटी अदबी बैठकों में नई पीढ़ी शब्दों से अपना रिश्ता जोड़ रही है। सोशल मीडिया के दौर में भी यहाँ किताबों के विमोचन और शायरी की शामें लोगों को एकत्र करती हैं। चुनौती यह है कि इस विरासत को केवल अतीत का गौरव न बनाया जाए, बल्कि नए लेखकों को मंच और पाठकों को अच्छी किताबें मिलती रहें। अदब बचेगा तो लखनऊ की आत्मा बचेगी।

दास्तान का सार

मीर, अनीस-दबीर और नासिख-आतिश से लेकर अमृतलाल नागर तक, लखनऊ ने उर्दू और हिन्दी दोनों साहित्यों को शिखर दिया। आज के साहित्यिक आयोजन उसी परंपरा को नई पीढ़ी तक पहुँचा रहे हैं।

सुर, ताल और मंच — संगीत, कथक और दास्तानगोई

लखनऊ की शामें केवल रोशनी से नहीं, सुरों से भी जगमगाती रही हैं। यहाँ संगीत महफ़िल की शान था, नृत्य भावों की भाषा और दास्तानगोई कल्पना की उड़ान। नवाबों के दरबार से लेकर आम लोगों की बैठकों तक, कला को देखने-सुनने का सलीका इस शहर ने बखूबी सीखा। तबला, पखावज, सारंगी और घुँघरुओं की आवाज़ गोमती किनारे की हवाओं में घुलती रही। यही कारण है कि लखनऊ का नाम आते ही कथक, ठुमरी और ग़ज़ल की याद अपने आप ताज़ा हो जाती है।

कथक का लखनऊ घराना विश्व भर में प्रसिद्ध है। इस घराने को सँवारने में कालका प्रसाद और उनके पुत्रों की परंपरा का बड़ा योगदान रहा, जिनमें बिंदादीन महाराज का नाम विशेष सम्मान से लिया जाता है। बिंदादीन महाराज ने नृत्य के साथ ठुमरी-रचना और भाव-प्रदर्शन को नई ऊँचाई दी। इसी परंपरा को पंडित बिरजू महाराज ने विश्व मंच तक पहुँचाया और लखनऊ घराने की नज़ाकत, लयकारी और अभिनय को देश-विदेश के दर्शकों का प्रिय बनाया। घुँघरुओं की हर झंकार में यहाँ इतिहास नाचता है।

ठुमरी का विकास भी लखनऊ की मिट्टी से गहराई से जुड़ा है। नवाब वाजिद अली शाह के संरक्षण में ठुमरी को दरबारी मंच मिला और वह भाव-प्रधान गायकी के रूप में निखरी। स्वयं वाजिद अली शाह संगीत और नृत्य के गहरे जानकार थे, उनके रहस और नाटकों में संगीत केवल सजावट नहीं, कथा की आत्मा होता था। ठुमरी में प्रेम, विरह और प्रतीक्षा के भाव इतनी कोमलता से आते हैं कि श्रोता शब्द से पहले सुर में बह जाता है। यह शैली आज भी लखनऊ की पहचान है।

ग़ज़ल गायकी की बात हो तो बेगम अख़्तर का नाम लखनऊ से अलग नहीं किया जा सकता। उनका लखनऊ से गहरा रिश्ता रहा, यहाँ की महफ़िलों ने उनकी आवाज़ को सुना और सराहा। उनकी गाई ग़ज़लों और ठुमरियों में दर्द और ठहराव का ऐसा जादू था जो आज भी पुराने रिकॉर्ड सुनने पर ताज़ा लगता है। उन्होंने ग़ज़ल को महफ़िल से निकालकर आम श्रोताओं के दिल तक पहुँचाया। उनके बाद भी लखनऊ में ग़ज़ल, दादरा और शास्त्रीय गायन की परंपरा निरंतर आगे बढ़ती रही।

दास्तानगोई लखनऊ की सबसे अनोखी कलाओं में से एक है। दास्तानगो अपने शब्दों से युद्ध, प्रेम, जादू और वीरता की ऐसी दुनिया बुनता था कि श्रोता घंटों बँधा रहता था। बिना किसी बड़े मंच-सज्जा के, केवल आवाज़, हाव-भाव और कथा-कौशल से पूरा दृश्य आँखों के सामने खड़ा हो जाता था। बीच में यह कला लगभग खो-सी गई थी, पर हाल के वर्षों में इसके पुनरुद्धार ने फिर साबित किया कि कहानी सुनाने की ताक़त किसी भी तकनीक से कम नहीं होती।

मंच की दुनिया में पारसी थिएटर और नौटंकी ने भी लखनऊ के दर्शकों को लंबे समय तक बाँधे रखा। रंग-बिरंगे परदे, गीत-संगीत और संवादों की तड़क-भड़क आम लोगों के मनोरंजन का बड़ा साधन थी। इसी सांस्कृतिक माहौल में 1926 में पंडित विष्णु नारायण भातखंडे के प्रयासों से भातखंडे संगीत संस्थान की स्थापना हुई, जिसने संगीत शिक्षा को व्यवस्थित रूप दिया। इस संस्थान ने अनगिनत गायकों, वादकों और नर्तकों को तैयार किया और लखनऊ को संगीत-शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बनाया।

आज लखनऊ के मंच फिर से जीवंत हो रहे हैं। कथक केन्द्रों, संगीत विद्यालयों, थिएटर समूहों और साहित्य-संगीत उत्सवों में युवा कलाकार अपनी प्रतिभा दिखा रहे हैं। दास्तानगोई की नई प्रस्तुतियाँ, ठुमरी की महफ़िलें और नाटकों के मंचन यह बताते हैं कि परंपरा रुकी नहीं है, वह नए रूप में आगे बढ़ रही है। ज़रूरत केवल इतनी है कि कलाकारों को सम्मान, मंच और आजीविका तीनों मिलें, ताकि सुर और ताल की यह दास्तान आने वाली पीढ़ियों तक बिना टूटे पहुँचे।

दास्तान का सार

लखनऊ घराने का कत्थक, ठुमरी, बेगम अख्तर की ग़ज़ल और दास्तानगोई ने इस शहर को कला का केन्द्र बनाया। भातखंडे संस्थान से लेकर आज के मंचों तक यह परंपरा जीवित और गतिशील है।

चिकनकारी — सुई-धागे में ढला शहर

लखनऊ की सबसे कोमल पहचान उसकी चिकनकारी है। सफ़ेद कपड़े पर सफ़ेद धागे से बनी यह कढ़ाई दूर से सादगी लगती है, पर पास से देखने पर उसमें फूल, बेल, पत्तियाँ और जालियों का पूरा बाग़ खिल उठता है। यह केवल वस्त्र की सजावट नहीं, हाथ की सफ़ाई, आँख की बारीकी और धैर्य की साधना है। गर्मी के मौसम में चिकन का कुर्ता पहनना लखनऊ में केवल फ़ैशन नहीं, तहज़ीब और जलवायु दोनों का सम्मान माना जाता है।

चिकनकारी की उत्पत्ति को लेकर एक प्रचलित परंपरा-कथा नूरजहाँ से जोड़ी जाती है। इस कथा के रूप में कहा जाता है कि उनकी रुचि और संरक्षण से यह कला मुग़ल दौर में निखरी और फिर अवध तक पहुँची। इतिहासकार इसके हर विवरण पर एकमत न हों, पर लोक-स्मृति में यह कथा चिकन को शाही स्वाद से जोड़ती है। नवाबों के दौर में लखनऊ ने इसे अपनाया, दरबारों और बेगमों के वस्त्रों में इसका चलन बढ़ा और स्थानीय कारीगरों ने इसे अपनी पहचान बना लिया।

चिकनकारी की असली शान उसके टाँकों में है, जिनकी संख्या बत्तीस से अधिक मानी जाती है। बखिया, जिसे छाया का काम कहा जाता है, सबसे प्रसिद्ध टाँका है, जिसमें कपड़े के उल्टी ओर की कढ़ाई सीधी ओर छाया जैसी दिखती है। इसके अलावा फंदा, मुरी, जाली, टेपची और कील-कंगन जैसे टाँके हर डिज़ाइन को अलग रूप देते हैं। हर टाँका सीखने में वर्षों लगते हैं और कुशल कारीगर बिना देखे भी सुई की गति से पहचान लिया जाता है।

एक चिकन वस्त्र तैयार होने की प्रक्रिया लंबी और सामूहिक होती है। पहले कपड़े पर लकड़ी के ब्लॉक से नील या हल्के रंग से डिज़ाइन की छपाई होती है, फिर कढ़ाई करने वालों के हाथों वह डिज़ाइन धागों में ढलता है। इसके बाद छपाई मिटाने के लिए धुलाई होती है और अंत में इस्त्री व जाँच के बाद वस्त्र बाज़ार तक पहुँचता है। डिज़ाइनर, छपाई करने वाला, कढ़ाईकार और धोबी, हर कड़ी महत्वपूर्ण है। किसी एक की मेहनत छूट जाए तो वस्त्र अधूरा रह जाता है।

इस चमक के पीछे कारीगर, विशेषकर महिलाओं की कठिन मेहनत छिपी है। चौक और आस-पास के मोहल्लों तथा गाँवों में हज़ारों महिलाएँ घर बैठकर कढ़ाई करती हैं और परिवार की आय में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। घंटों झुककर काम करने से आँखों और पीठ पर असर पड़ता है, फिर भी उन्हें अक्सर बहुत कम मज़दूरी मिलती है, जबकि तैयार वस्त्र बड़े बाज़ारों में कई गुना दाम पर बिकता है। यह चुनौती आज भी चिकन उद्योग का सबसे गंभीर प्रश्न है, जिस पर ईमानदार ध्यान ज़रूरी है।

मान्यता की दृष्टि से चिकनकारी को बड़ी सफलताएँ भी मिली हैं। वर्ष 2008 में लखनऊ चिकन क्राफ़्ट को जीआई टैग मिला, जिससे इसकी भौगोलिक पहचान और संरक्षण को कानूनी आधार मिला। बाद में इसे एक जनपद एक उत्पाद यानी ओडीओपी योजना में भी चुना गया, जिससे प्रचार और बाज़ार विस्तार को बल मिला। आज लखनऊ की चिकन केवल देश के महानगरों तक नहीं, दुनिया भर के बाज़ारों तक पहुँच रही है। ऑनलाइन बिक्री ने छोटे कारीगरों और उद्यमियों के लिए नए द्वार भी खोले हैं।

भविष्य में चिकनकारी की असली जीत तब होगी जब कारीगर को उसके हुनर का पूरा सम्मान और उचित दाम दोनों मिलेंगे। नए डिज़ाइन, अच्छी पैकेजिंग, प्रशिक्षण और सीधे बाज़ार से जुड़ाव इस कला को और मज़बूत कर सकते हैं। युवाओं को भी इसे केवल पुरानी कला न मानकर रोज़गार और उद्यम का अवसर समझना चाहिए। सुई-धागे में ढला यह शहर यदि अपने कारीगरों को साथ लेकर चलेगा, तो चिकन की सफ़ेद चमक दुनिया में और दूर तक फैलेगी।

दास्तान का सार

बखिया से जाली तक बत्तीस से अधिक टाँकों वाली चिकनकारी लखनऊ की कोमलतम पहचान है, जिसे 2008 में जीआई टैग मिला। कारीगर महिलाओं को उचित मज़दूरी और सम्मान देना ही इस कला का सच्चा भविष्य है।

खान-पान की दास्तान — कबाब से कुल्फी तक

लखनऊ की बात हो और खान-पान का ज़िक्र न आए, यह संभव ही नहीं। यहाँ खाना केवल पेट भरने का साधन नहीं, मेहमाननवाज़ी, तहज़ीब और प्रेम जताने का तरीक़ा है। अवध के बावर्चीख़ानों ने स्वाद को कला का दर्जा दिया, जहाँ मसालों का संतुलन, पकाने का धैर्य और परोसने का सलीक़ा एक साथ चलता था। इसीलिए लखनऊ का दस्तरख़ान पूरे देश में सम्मान से याद किया जाता है और यहाँ आने वाला हर मेहमान कुछ स्वाद साथ लेकर लौटता है।

अवधी खान-पान की आत्मा दम-पुख़्त की कला में बसती है। सीलबंद हांडी में धीमी आँच पर पकता खाना अपने रस और ख़ुशबू को भीतर ही समेट लेता है। जब ढक्कन खुलता है तो भाप के साथ उठती सुगंध पूरे माहौल को भर देती है। बावर्चियों ने पीढ़ियों तक इस विधि को सँवारा और हर व्यंजन में समय का सम्मान रखा। जल्दबाज़ी यहाँ के स्वाद की दुश्मन मानी गई। यही धैर्य लखनऊ की बिरयानी, कोरमे और कबाबों को दूसरे शहरों से अलग करता है।

गलावटी कबाब की प्रचलित कथा लखनऊ में हर खाने के शौकीन ने सुनी है। इस प्रचलित कथा के रूप में कहा जाता है कि नवाब आसफ़-उद-दौला के दाँत कमज़ोर हो गए थे, तब एक हाथ वाले बावर्ची हाजी मुराद अली, जो बाद में टुंडे नाम से प्रसिद्ध हुए, ने ऐसा कबाब बनाया जो मुँह में रखते ही घुल जाए। सौ से अधिक मसालों की बात भी इसी कथा के साथ जोड़ी जाती है। सत्य और लोक-स्मृति चाहे जितनी घुली-मिली हो, गलावटी कबाब आज लखनऊ का स्वाद-प्रतीक बन चुका है।

लखनऊ बिरयानी अपने हल्के रंग, अलग पके चावल-मांस और संतुलित ख़ुशबू के लिए जानी जाती है। इसके साथ कुलचा-निहारी का नाश्ता पुराने लखनऊ की सुबहों की पहचान है, जहाँ धीमी आँच पर पकी निहारी और नरम कुलचा दिन की शुरुआत को ख़ास बना देते हैं। शीरमाल की हल्की मिठास और केसरिया रंग, ज़र्दे की मीठी चमक और सालन के साथ इनका मेल अवधी थाली को पूरा करता है। हर व्यंजन में भारीपन से अधिक संतुलन और नफ़ासत को महत्व दिया गया है।

चौक की गलियों में चाट की चटपटी दुनिया बसती है। पानी के बताशे, टिक्की, दही-बड़े और मटर की चाट शाम को बाज़ार की रौनक बढ़ा देते हैं। भोजन के बाद गिलौरी-पान का बीड़ा मुँह का स्वाद भी बदलता है और महफ़िल का समापन भी करता है। अमीनाबाद की कुल्फी और वहाँ की मिठास गर्मी में राहत देती है। राम आसरे की मिठाई परंपरा भी लखनऊ के पुराने स्वाद-घरों में सम्मान से याद की जाती है, जहाँ गुणवत्ता ही पहचान बनी।

सर्दियों की सुबह लखनऊ में मक्खन-मलाई के बिना अधूरी लगती है, जिसे यहाँ निमिष भी कहा जाता है। ओस और ठंड की मदद से तैयार यह हल्की, झागदार मिठास मुँह में रखते ही घुल जाती है और सुबह बीतते ही इसका रूप बदलने लगता है, इसलिए इसे ताज़ा ही खाया जाता है। केसर और पिस्ते की हल्की सजावट इसे और आकर्षक बनाती है। यह व्यंजन बताता है कि लखनऊ का स्वाद केवल मसालों में नहीं, मौसम और प्रकृति के साथ तालमेल में भी बसता है।

लखनऊ के खान-पान को विश्व स्तर पर ऐतिहासिक सम्मान तब मिला जब 31 अक्टूबर 2025 को यूनेस्को ने लखनऊ को क्रिएटिव सिटी ऑफ़ गैस्ट्रोनॉमी घोषित किया। हैदराबाद के बाद लखनऊ भारत का दूसरा ऐसा शहर बना, जिसे यह गौरव प्राप्त हुआ। यह सम्मान केवल कबाब और बिरयानी का नहीं, उन बावर्चियों, हलवाइयों, कारीगरों और परिवारों का है जिन्होंने सदियों तक स्वाद की यह विरासत बचाई। अब ज़िम्मेदारी है कि इस पहचान के साथ स्वच्छता, गुणवत्ता और परंपरा तीनों को और मज़बूत किया जाए।

दास्तान का सार

दम-पुख्त, गलावटी कबाब, बिरयानी और मक्खन-मलाई से सजा लखनऊ का स्वाद अब विश्व-मान्यता प्राप्त कर चुका है। 31 अक्टूबर 2025 को यूनेस्को का क्रिएटिव सिटी ऑफ़ गैस्ट्रोनॉमी सम्मान इस विरासत की सबसे बड़ी मुहर है।

गली-मोहल्ला और बाज़ार — शहर की असली पहचान

लखनऊ को समझना हो तो उसकी बड़ी इमारतों से पहले उसकी गलियों में उतरना पड़ता है। पुराने लखनऊ की आत्मा चौक में बसती है, जहाँ अकबरी दरवाज़ा और गोल दरवाज़ा आज भी आने-जाने वालों का स्वागत करते हैं। इन दरवाज़ों के भीतर संकरी गलियाँ, पुराने मकान, छोटे-छोटे मंदिर-मस्जिद और सदियों पुरानी दुकानें एक साथ साँस लेते हैं। यहाँ हर मोड़ पर कोई न कोई कहानी मिलती है, कोई पुराना नाम, कोई भूली हुई पहचान। चौक केवल बाज़ार नहीं, वह शहर की यादों का सबसे जीवंत संग्रह है।

चौक से लगा नखास बाज़ार अपने अलग रंग के लिए जाना जाता है। कभी यहाँ घोड़ों और जानवरों का बाज़ार लगता था, आज वहाँ रोज़मर्रा की ज़रूरतों से लेकर पुरानी चीज़ों तक सब कुछ मिलता है। नखास की भीड़, आवाज़ें और सौदेबाज़ी का अंदाज़ लखनऊ की गंगा-जमुनी ज़िंदगी को दिखाता है। पास ही पुरानी हवेलियाँ और कटरे खड़े हैं, जिनमें कई परिवार पीढ़ियों से रहते आए हैं। इन कटरों में आँगन साझा होता है, सुख-दुख साझा होता है, और मोहल्लेदारी आज भी केवल शब्द नहीं, जीने का तरीका है।

अमीनाबाद की कहानी नवाब अमजद अली शाह के समय से जुड़ी है, जब यह बाज़ार योजनाबद्ध ढंग से बसाया गया। समय के साथ अमीनाबाद लखनऊ का सबसे लोकप्रिय खरीदारी केंद्र बन गया। कपड़े, जूते, किताबें, मिठाई और रोज़ के सामान के लिए हर वर्ग का आदमी यहाँ आता है। प्रकाश सिनेमा के आसपास की रौनक, पुरानी दुकानों के बोर्ड और शाम की भीड़ अमीनाबाद को एक अलग पहचान देती है। यह बाज़ार बताता है कि लखनऊ में नवाबी शान के साथ आम आदमी की ज़रूरत हमेशा साथ चली है।

हज़रतगंज लखनऊ का वह चेहरा है जो 1810 में बसाया गया और धीरे-धीरे शहर की शान बन गया। चौड़ी सड़क, दोनों ओर दुकानें, कॉफ़ी हाउस और सिनेमा हॉल ने इसे नई पीढ़ी का प्रिय स्थान बनाया। 'गंजिंग' शब्द यहीं से जन्मा — बिना किसी खास काम के शाम को हज़रतगंज में टहलना, दोस्तों से मिलना और चाय-कॉफ़ी पर गपशप करना। यह परंपरा आज भी जीवित है। हज़रतगंज बताता है कि शहर केवल ख़रीदारी से नहीं बनता, मिलने-जुलने की जगहों से बनता है।

कैसरबाग़ और यहियागंज पुराने लखनऊ के दो और महत्वपूर्ण पड़ाव हैं। कैसरबाग़ नवाब वाजिद अली शाह के सपनों का बाग़ था, जहाँ कभी महल, बारादरी और बाग़ों की शान थी। आज वहाँ की टूटी-फूटी इमारतें भी उस दौर की कहानी कहती हैं। यहियागंज व्यापार का पुराना केंद्र रहा है, जहाँ थोक बाज़ार और गोदामों ने शहर की अर्थव्यवस्था को गति दी। इन इलाकों में चलने पर समझ आता है कि लखनऊ केवल रहने की जगह नहीं रहा, वह व्यापार, कला और सत्ता का संगम रहा है।

नदी के उस पार और शहर के विस्तार के साथ नया लखनऊ बसा — गोमती नगर, इंदिरा नगर, अलीगंज, आलमबाग और राजाजीपुरम। चौड़ी सड़कें, पार्क, बाज़ार, स्कूल और अपार्टमेंट इन इलाकों की पहचान हैं। गोमती नगर आज आधुनिक लखनऊ का सबसे बड़ा आवासीय क्षेत्र है, तो राजाजीपुरम और आलमबाग मध्यम वर्ग के सपनों का पता हैं। यहाँ के बाज़ारों में पुराने शहर जैसी तंग गलियाँ नहीं हैं, पर चाय की दुकान पर होने वाली गपशप और मोहल्ले की पहचान यहाँ भी उसी अपनापन के साथ मिलती है।

हर मोहल्ले का अपना रंग है — कहीं चिकन की दुकानें, कहीं कबाब की खुशबू, कहीं किताबों की पुरानी दुकान, तो कहीं सुबह की सब्ज़ी मंडी की आवाज़। मोहल्ला केवल मकानों का समूह नहीं होता, वह पहचान होता है। लखनऊ का आदमी आज भी अपना परिचय मोहल्ले के नाम से देता है। यही गली-मोहल्ले और बाज़ार इस शहर की असली पहचान हैं, क्योंकि इन्हीं में लखनऊ रोज़ जीता है, रोज़ बदलता है और फिर भी अपने पुराने अंदाज़ को बचा लेता है।

दास्तान का सार

लखनऊ की असली पहचान उसकी भव्य इमारतों से अधिक उसकी गलियों, मोहल्लों और बाज़ारों में बसती है। चौक से हज़रतगंज और गोमती नगर तक, हर इलाके का अपना रंग है, पर अपनापन सब जगह एक जैसा है।

सियासत का शहर — समझौते से सरकार तक

लखनऊ केवल तहज़ीब और अदब का शहर नहीं है, वह भारतीय राजनीति के कई निर्णायक मोड़ों का साक्षी भी रहा है। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में यह शहर बैठकों, समझौतों और आंदोलनों का केंद्र बना। यहाँ लिए गए फैसलों ने देश की दिशा तय की। सियासत में लखनऊ का अंदाज़ हमेशा संवाद का रहा है — मतभेद हो सकते हैं, पर बातचीत का रास्ता बंद नहीं होता। यही कारण है कि देश के बड़े नेता बार-बार इस शहर की ओर लौटते रहे और यहाँ की जनता ने उन्हें ध्यान से सुना।

सन् 1916 का प्रसिद्ध लखनऊ समझौता इस शहर की सबसे बड़ी राजनीतिक विरासतों में से एक है। इसी अधिवेशन में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौता हुआ और साथ ही कांग्रेस के नरम और गरम दल के दोनों गुटों का मेल भी यहीं संभव हुआ। यह एकता उस समय की राजनीति के लिए बहुत बड़ी घटना थी। लखनऊ समझौता बताता है कि जब देश एक बड़े लक्ष्य के लिए खड़ा होता है, तो मतभेदों को किनारे रखकर साझा रास्ता बनाया जा सकता है। यह शहर समझौते की इसी भावना का प्रतीक बन गया।

सन् 1928 में साइमन कमीशन के विरोध की गूँज भी लखनऊ में तेज़ सुनाई दी। कमीशन के आगमन पर शहर में प्रदर्शन हुए और उस दौर के संघर्ष में पंडित जवाहरलाल नेहरू पर लाठीचार्ज का प्रसंग इतिहास में सावधानी के साथ याद किया जाता है। अवध के किसान आंदोलन की आवाज़ भी लखनऊ तक पहुँचती रही, क्योंकि यह शहर प्रशासन का केंद्र था। किसानों की माँगें, लगान का बोझ और ज़मींदारी व्यवस्था के विरुद्ध उठती आवाज़ों ने यहाँ के राजनीतिक वातावरण को गहराई से प्रभावित किया।

आज़ादी के बाद लखनऊ उत्तर प्रदेश की राजधानी बना और यहीं से देश के सबसे बड़े राज्य का शासन चलने लगा। विधान भवन, सचिवालय और अन्य सरकारी भवन इस नई भूमिका के प्रतीक बने। विधान सभा की बहसों, मंत्रिमंडल के फैसलों और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं ने लखनऊ को केवल ऐतिहासिक शहर से आगे बढ़ाकर एक जीवंत प्रशासनिक केंद्र बना दिया। यहाँ की राजनीति में प्रदेश के हर क्षेत्र की आवाज़ सुनाई देती है, क्योंकि राजधानी होना केवल पद नहीं, ज़िम्मेदारी भी है।

लखनऊ की संसदीय पहचान को अटल बिहारी वाजपेयी के नाम के साथ विशेष रूप से याद किया जाता है। वे लखनऊ से पाँच बार सांसद चुने गए और प्रधानमंत्री के रूप में भी इस शहर से उनका संबंध बना रहा। उनकी वाणी, संसदीय मर्यादा और सबको साथ लेकर चलने की शैली को लखनऊ की जनता ने अपना माना। किसी भी दल से ऊपर उठकर, यहाँ के लोगों ने व्यक्तित्व और कार्य को सम्मान दिया। यह बात लखनऊ की राजनीतिक समझ को दर्शाती है, जहाँ मतदाता भावना के साथ विवेक का भी उपयोग करता है।

आज का लखनऊ राजनीति के नए दौर को देख रहा है — विकास के मुद्दे, युवा मतदाता, महिला भागीदारी और स्थानीय समस्याओं पर बहस अब अधिक खुलकर होती है। सोशल मीडिया और तेज़ संचार ने राजनीति का चेहरा बदला है, पर लखनऊ की जनता आज भी शालीन बहस और तथ्यों को महत्व देती है। चुनाव के दिनों में चाय की दुकानों से लेकर मोहल्लों तक चर्चाएँ होती हैं, पर कटुता को स्थायी बनाना इस शहर का स्वभाव नहीं रहा। यही संतुलन लखनऊ की राजनीतिक पहचान को अलग बनाता है।

सियासत का शहर होने का अर्थ केवल सत्ता का केंद्र होना नहीं है। इसका अर्थ है — जनता की आवाज़ को सुनना, असहमति का सम्मान करना और लोकतंत्र को रोज़ जीना। लखनऊ ने समझौते भी देखे हैं, आंदोलन भी देखे हैं और सरकारें भी बनती-बदलती देखी हैं। इन सबके बीच इस शहर ने एक बात हमेशा बचाए रखी है — संवाद। आने वाले समय में भी लखनऊ की राजनीति यदि इसी संतुलित और मर्यादित परंपरा पर चलेगी, तो वह प्रदेश ही नहीं, देश के लिए भी एक उदाहरण बनी रहेगी।

दास्तान का सार

लखनऊ समझौते से लेकर राजधानी बनने तक, इस शहर ने भारतीय राजनीति को संवाद और संतुलन की भाषा दी है। यहाँ सियासत का अर्थ सत्ता से अधिक लोकतंत्र की मर्यादा और जनता की आवाज़ का सम्मान है।

क़लम की ताक़त — पत्रकारिता और छापाख़ाना

लखनऊ की दास्तान में क़लम का स्थान तलवार से कम नहीं रहा है। इस शहर ने शब्दों को सम्मान दिया, किताबों को सहेजा और अख़बारों को समाज का दर्पण बनाया। जब छापाख़ाना आया, तो लखनऊ केवल सुनने वाला शहर नहीं रहा, वह पढ़ने वाला शहर भी बन गया। विचार घरों से निकलकर बाज़ारों, चायख़ानों और पुस्तकालयों तक पहुँचने लगे। पत्रकारिता ने यहाँ के लोगों को अपने समय से जोड़ने का काम किया और धीरे-धीरे क़लम शहर की सबसे मज़बूत आवाज़ बन गई।

इस कहानी का सबसे उज्ज्वल नाम मुंशी नवल किशोर का है, जिन्होंने 1858 में लखनऊ में नवल किशोर प्रेस की स्थापना की। यह प्रेस अपने समय में एशिया की सबसे बड़ी छापाख़ानों में गिनी जाती थी। यहाँ से हिंदी, उर्दू, संस्कृत, फ़ारसी और अरबी की हज़ारों किताबें छपीं — धार्मिक ग्रंथों से लेकर साहित्य और इतिहास तक। नवल किशोर ने छपाई को केवल व्यवसाय नहीं बनाया, उसे ज्ञान के प्रचार का माध्यम बनाया। लखनऊ से छपी किताबें देश-विदेश तक पहुँचीं और शहर का नाम विद्या के नक्शे पर चमक उठा।

नवल किशोर प्रेस से प्रकाशित 'अवध अखबार' 1858-59 के आसपास शुरू होकर उर्दू पत्रकारिता के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यह अखबार समाचारों के साथ समाज, शासन और साहित्य पर भी नज़र रखता था। उस दौर में अखबार निकालना आसान काम नहीं था — संसाधन कम थे, दबाव अधिक था, फिर भी संपादकों ने सच लिखने का साहस दिखाया। अवध अखबार और उसके बाद आए अनेक पत्रों ने उर्दू पत्रकारिता के स्वर्ण काल की नींव रखी। लखनऊ में अखबार पढ़ना एक सांस्कृतिक आदत बन गई।

हिंदी और उर्दू अखबारों की यह साझा परंपरा लखनऊ की गंगा-जमुनी पहचान का सबसे सुंदर प्रमाण है। एक ही शहर में दो भाषाओं के अखबार निकलते थे, एक-दूसरे को पढ़ते थे और समाज के प्रश्नों पर संवाद करते थे। आज़ादी के आंदोलन में इन अखबारों की भूमिका बहुत बड़ी रही — उन्होंने जनता को जागरूक किया, अत्याचार की खबरें पहुँचाईं और नेताओं के विचारों को गाँव-कस्बों तक ले जाने का काम किया। कई बार अखबारों पर प्रतिबंध लगे, संपादक जेल गए, पर क़लम रुकी नहीं।

आज़ादी के बाद लखनऊ की पत्रकारिता ने नए रूप लिए। बड़े हिंदी और अंग्रेज़ी अख़बारों के संस्करण यहाँ से निकलने लगे, पत्रकारिता प्रशिक्षण के संस्थान बने और रिपोर्टिंग का दायरा राजनीति से आगे बढ़कर समाज, शिक्षा, स्वास्थ्य और आम आदमी के मुद्दों तक फैला। विधायिका और शासन की राजधानी होने के कारण लखनऊ राजनीतिक पत्रकारिता का प्रमुख केंद्र बना। यहाँ के पत्रकारों ने सत्ता से प्रश्न पूछने की परंपरा को जीवित रखा, जो किसी भी लोकतंत्र के लिए सबसे आवश्यक कार्य है।

आज पत्रकारिता डिजिटल युग में प्रवेश कर चुकी है। टेलीविज़न चैनल, समाचार पोर्टल, यूट्यूब और सोशल मीडिया ने ख़बरों की गति बहुत तेज़ कर दी है। अब समाचार घंटों में नहीं, मिनटों में पहुँचता है। इस तेज़ी के साथ ज़िम्मेदारी की चुनौती भी बढ़ी है — सत्य की जाँच, भाषा की मर्यादा और आम आदमी की गरिमा का ध्यान रखना आज पहले से अधिक ज़रूरी है। लखनऊ के नए पत्रकार इसी बदलते दौर में अपनी जगह बना रहे हैं, पर शहर की पुरानी सीख आज भी वही है — ख़बर वही, जो सच हो और जनहित में हो।

एक संपादक के रूप में मेरा अपना अनुभव भी मुझे यही सिखाता है कि पत्रकारिता का असली धर्म आम आदमी की आवाज़ बनना है। मानवाधिकार मीडिया से जुड़े अपने कार्य में मैंने बार-बार देखा है कि जिनकी सुनवाई कहीं नहीं होती, उनके लिए एक सही मंच ही न्याय की पहली सीढ़ी बनता है। यह कोई आत्म-प्रशंसा नहीं है, यह लखनऊ की उसी पुरानी परंपरा का सिद्धांत है जो नवल किशोर के समय से चली आ रही है — क़लम की ताक़त तभी है, जब वह कमज़ोर के पक्ष में खड़ी हो।

दास्तान का सार

नवल किशोर प्रेस से डिजिटल पोर्टल तक, लखनऊ की पत्रकारिता ने हमेशा शब्द को ज़िम्मेदारी माना है। क़लम की असली ताक़त सत्ता के निकट होने में नहीं, आम आदमी की आवाज़ बनने में है।

इल्म के केंद्र — शिक्षा और संस्थाएँ

लखनऊ को केवल नवाबों और शायरों का शहर कहना अधूरा होगा, वह इल्म का शहर भी है। यहाँ की हवाओं में अदब के साथ विद्या की भी खुशबू रही है। मदरसों, पाठशालाओं, पुस्तकालयों और बाद में विश्वविद्यालयों ने इस शहर को सोचने-समझने वालों का केंद्र बनाया। शिक्षा यहाँ केवल नौकरी पाने का साधन नहीं मानी गई, उसे व्यक्तित्व बनाने और समाज को दिशा देने का कार्य समझा गया। यही कारण है कि लखनऊ के विद्वानों का सम्मान दूर-दूर तक होता रहा है।

फ़िरंगी महल के उलेमा का नाम इस परंपरा में सबसे पहले लिया जाता है। औरंगज़ेब के समय से जुड़े इस परिवार ने तर्क, दर्शन, न्यायशास्त्र और इस्लामी शिक्षा के क्षेत्र में गहरी विद्वत्ता का परिचय दिया। यहाँ तैयार किया गया पाठ्यक्रम 'दर्स-ए-निज़ामी' सदियों तक मदरसों में पढ़ाया गया। फ़िरंगी महल केवल एक इमारत नहीं थी, वह विचारों की प्रयोगशाला थी, जहाँ प्रश्न पूछना और तर्क करना शिक्षा का हिस्सा था। लखनऊ की बौद्धिक पहचान को गढ़ने में इस केंद्र की भूमिका बहुत बड़ी रही है।

सन् 1894 में स्थापित दारुल उलूम नदवतुल उलेमा और 1898 में उसका लखनऊ स्थानांतरण शहर की शैक्षणिक कहानी का महत्वपूर्ण अध्याय है। नदवा ने परंपरागत इस्लामी शिक्षा को आधुनिक आवश्यकताओं से जोड़ने का प्रयास किया और अरबी भाषा व साहित्य के क्षेत्र में अंतरराष्ट्रीय ख्याति पाई। यहाँ के विद्यार्थी और विद्वान देश-विदेश में फैले हैं। गोमती किनारे स्थित इसका परिसर आज भी शांत अध्ययन का वातावरण देता है। नदवा बताता है कि लखनऊ में धार्मिक शिक्षा भी केवल परंपरा नहीं, विद्वत्ता और संवाद के साथ आगे बढ़ी है।

सन् 1920 में स्थापित लखनऊ विश्वविद्यालय ने आधुनिक उच्च शिक्षा को इस शहर में मज़बूत आधार दिया। कैनिंग कॉलेज की परंपरा से आगे बढ़कर यह विश्वविद्यालय कला, विज्ञान, विधि, वाणिज्य और अनेक विषयों का केंद्र बना। इसके परिसर की पुरानी इमारतें, पुस्तकालय और बाग़ विद्यार्थियों की कई पीढ़ियों की यादें सहेजे हैं। यहाँ पढ़े विद्यार्थी देश के प्रशासन, न्यायपालिका, साहित्य, विज्ञान और राजनीति में महत्वपूर्ण स्थानों तक पहुँचे। विश्वविद्यालय ने लखनऊ को युवा ऊर्जा और बौद्धिक बहसों का शहर बनाए रखा है।

चिकित्सा शिक्षा के क्षेत्र में 1911 में स्थापित किंग जॉर्ज मेडिकल कॉलेज, जो आज किंग जॉर्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय के रूप में जाना जाता है, लखनऊ की शान है। यह संस्थान न केवल उत्तर प्रदेश, बल्कि पूरे देश के लिए डॉक्टर तैयार करता है। गरीब से गरीब मरीज़ के लिए यहाँ इलाज की उम्मीद बनी रहती है। इसके साथ ही ला मार्टिनियर जैसे प्रसिद्ध विद्यालयों ने भी शहर की शिक्षा को अलग पहचान दी है। ला मार्टिनियर की भव्य इमारत और अनुशासन की परंपरा आज भी विद्यार्थियों के लिए प्रेरणा है।

संगीत और कला की शिक्षा में भातखंडे का नाम लखनऊ से गहराई से जुड़ा है। पंडित विष्णु नारायण भातखंडे के प्रयासों से शास्त्रीय संगीत को व्यवस्थित शिक्षा का रूप मिला और लखनऊ इस दिशा में अग्रणी बना। इसके अलावा शहर के अनेक प्रसिद्ध स्कूल-कॉलेज, तकनीकी संस्थान, प्रबंधन संस्थान और नए निजी विश्वविद्यालयों ने शिक्षा के नक्शे को और विस्तार दिया है। आज लखनऊ में पढ़ने के लिए दूर-दूर से विद्यार्थी आते हैं, जिससे शहर में एक युवा और जीवंत वातावरण बना रहता है।

इल्म के इन केंद्रों ने लखनऊ को केवल अतीत की शान नहीं दी, वे उसके भविष्य की नींव भी हैं। एक शहर तभी आगे बढ़ता है, जब उसके पास सोचने वाले लोग हों, प्रश्न पूछने वाले विद्यार्थी हों और ज्ञान को समाज तक पहुँचाने वाले शिक्षक हों। लखनऊ के पास यह पूँजी सदियों से है। आवश्यकता केवल इतनी है कि हम अपनी संस्थाओं को सम्मान दें, पुस्तकालयों को जीवित रखें और नई पीढ़ी को किताबों से जोड़ें। तभी यह शहर सचमुच इल्म का शहर बना रहेगा।

दास्तान का सार

फ़िरंगी महल से नदवा और लखनऊ विश्वविद्यालय से केजीएमयू तक, इस शहर की संस्थाओं ने ज्ञान को समाज की सेवा से जोड़ा है। लखनऊ की असली पूँजी उसकी इमारतें नहीं, उसके पढ़ने-सोचने वाले लोग हैं।

आम आदमी का लखनऊ — शहर की धड़कन

लखनऊ की असली दास्तान किताबों में कम, सड़कों पर अधिक मिलती है। सुबह-सुबह गोमती किनारे टहलते बुजुर्ग, योग करते युवा और नदी की ठंडी हवा में दिन की शुरुआत करता शहर एक अलग ही दृश्य बनाता है। किनारे बैठे लोग अखबार पढ़ते हैं, चाय की चुस्की लेते हैं और देश-दुनिया की चर्चा करते हैं। यह सुबह का लखनऊ शांत होता है, पर उसके भीतर पूरे दिन की ऊर्जा छिपी होती है। शहर की धड़कन यहीं से अपनी लय पकड़ती है।

थोड़ी देर बाद सड़कों पर रिक्शा, टाँगा, ऑटो और बसों की आवाज़ें गूँजने लगती हैं। रिक्शा चलाने वाला, जो सुबह से यात्रियों को उनके गंतव्य तक पहुँचाता है, इस शहर की गति का असली सारथी है। कभी टाँगे की टापों से गूँजने वाला लखनऊ आज मोटर की आवाज़ों में बदल गया है, पर मेहनत का चेहरा वही है। ये लोग धूप, बारिश और सर्दी में भी शहर को चलायमान रखते हैं। इनके बिना लखनऊ की कोई सुबह पूरी नहीं होती और कोई शाम घर नहीं लौटती।

चिकन के कारखानों और घरों में काम करती कारीगर महिलाएँ और पुरुष लखनऊ की पहचान को अपने हाथों से बुनते हैं। सफ़ेद कपड़े पर महीन कढ़ाई करना धैर्य और हुनर का काम है। एक-एक टाँके में घंटों लगते हैं, पर मज़दूरी अक्सर उस मेहनत के अनुपात में नहीं मिलती। फिर भी ये कारीगर अपने हुनर पर गर्व करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि दुनिया लखनऊ को उन्हीं के काम से पहचानती है। इन कारीगरों की कहानी शहर की शान के पीछे छिपी मेहनत की कहानी है।

छोटे दुकानदार, ठेले वाले, चाय वाले और दिहाड़ी मज़दूर — ये सब लखनऊ के रोज़मर्रा के नायक हैं। अमीनाबाद की छोटी दुकान हो या मोहल्ले की परचून की दुकान, यहाँ केवल सामान नहीं बिकता, भरोसा बिकता है। उधार की कॉपी, पहचान के नाम और वर्षों के संबंध इस अर्थव्यवस्था को चलाते हैं। विद्यार्थी सुबह कोचिंग की ओर भागते हैं, सरकारी दफ़्तरों के कर्मचारी फ़ाइलों के साथ शहर का प्रशासन चलाते हैं। हर आदमी अपने संघर्ष में है, पर शहर सबको एक धागे में बाँधे रखता है।

भीड़-भाड़ और भागदौड़ के बीच भी लखनऊ का आदमी अपनी तहज़ीब नहीं भूलता। बस में बुजुर्ग को जगह देना, अनजान को रास्ता बताना, 'पहले आप' कहकर मुस्कुरा देना — ये छोटी बातें शहर को बड़ा बनाती हैं। मुश्किल के समय में मोहल्ले के लोग बिना बुलाए मदद के लिए खड़े हो जाते हैं। किसी के घर दुख हो तो पड़ोसी भोजन से लेकर हिम्मत तक सब बाँटते हैं। यह आपसी साथ ही लखनऊ की सबसे मज़बूत पूँजी है, जो किसी बाज़ार में नहीं मिलती।

यह सच भी है कि आम आदमी का लखनऊ आज कई चुनौतियों से जूझ रहा है। महँगाई ने घर का बजट बिगाड़ा है, युवाओं के सामने रोज़गार का प्रश्न खड़ा है और छोटे व्यापारियों को बदलते बाज़ार से तालमेल बिठाना पड़ रहा है। फिर भी इस शहर के आदमी के चेहरे पर निराशा स्थायी नहीं होती। वह मेहनत पर भरोसा करता है, बच्चों की शिक्षा में अपना भविष्य देखता है और हर शाम घर लौटते हुए अगले दिन की उम्मीद साथ लाता है। यही उम्मीद शहर को जीवित रखती है।

नवाबों की कहानियाँ समय के साथ किताबों में सिमट गईं, पर आम आदमी का लखनऊ आज भी हर गली में लिखा जा रहा है। रिक्शा चलाने वाले की मेहनत, कारीगर के हुनर, दुकानदार के भरोसे और विद्यार्थी के सपने में ही इस शहर की असली दास्तान बसती है। जो लखनऊ को सच में जानना चाहता है, उसे इन चेहरों को देखना होगा। क्योंकि शहर इमारतों से नहीं बनता, शहर उन लोगों से बनता है जो उसे रोज़ अपने पसीने और मोहब्बत से सींचते हैं।

दास्तान का सार

लखनऊ की धड़कन उसके आम लोगों में है — कारीगर, दुकानदार, मज़दूर, विद्यार्थी और कर्मचारी ही इस शहर की असली कहानी लिखते हैं। चुनौतियों के बीच उनकी मेहनत और उम्मीद ही लखनऊ को जीवंत बनाए रखती है।

बदलता लखनऊ, भविष्य का लखनऊ — अतीत से भविष्य तक

हर शहर के जीवन में एक समय आता है, जब वह अपने अतीत को सहेजते हुए भविष्य की ओर कदम बढ़ाता है। लखनऊ आज उसी मोड़ पर खड़ा है। एक ओर बड़ा इमामबाड़ा और रूमी दरवाज़ा उसकी सदियों पुरानी पहचान हैं, दूसरी ओर मेट्रो की रफ़्तार, चौड़ी सड़कें और ऊँची इमारतें उसके नए सपनों का पता हैं। यह बदलाव स्वाभाविक है, क्योंकि जो शहर बदलता नहीं, वह समय के साथ पीछे रह जाता है। प्रश्न केवल इतना है कि बदलाव की दिशा क्या हो और उसकी कीमत कौन चुकाए।

सन् 2017 में शुरू हुई लखनऊ मेट्रो ने शहर की यात्रा का अनुभव बदल दिया। हवाई अड्डे से शहर के प्रमुख इलाकों तक मेट्रो ने समय बचाया और भीड़ भरी सड़कों का बोझ कुछ कम किया। गोमती रिवरफ्रंट ने नदी किनारे टहलने और बैठने की नई जगह दी, जहाँ शाम को परिवार और युवा बड़ी संख्या में आते हैं। एक्सप्रेसवे ने लखनऊ को प्रदेश के अन्य शहरों से जोड़ा, एयरोसिटी और आईटी सिटी जैसे प्रोजेक्टों ने रोज़गार और निवेश की नई संभावनाएँ बनाई हैं। नया लखनऊ अब नक्शे पर तेज़ी से फैल रहा है।

गोमती नगर विस्तार, जानकीपुरम, सुशांत गोल्फ़ सिटी और अन्य नए क्षेत्रों में अपार्टमेंट, मॉल, अस्पताल और शिक्षण संस्थानों ने शहर का स्वरूप बदल दिया है। युवा पीढ़ी के लिए लखनऊ अब केवल सरकारी नौकरी का शहर नहीं रहा, वह स्टार्टअप, निजी क्षेत्र और रचनात्मक कार्यों की ओर भी बढ़ रहा है। हाल के वर्षों में लखनऊ को यूनेस्को की ओर से गैस्ट्रोनोंमी यानी खान-पान की रचनात्मक नगरी के रूप में मिली पहचान ने भी दुनिया का ध्यान इस शहर की ओर खींचा है। यह सम्मान उसके स्वाद और परंपरा दोनों का है।

परंतु विकास की इस दौड़ के साथ चुनौतियाँ भी उतनी ही बड़ी हैं। गोमती नदी का प्रदूषण आज सबसे गंभीर प्रश्न है — जिस नदी के किनारे शहर बसा, उसी का जल स्वच्छ रखना हमारी सामूहिक ज़िम्मेदारी है। बढ़ती आबादी और वाहनों से यातायात का दबाव बढ़ा है, पुराने शहर की गलियाँ बोझ उठा रही हैं और धरोहर-इमारतों के संरक्षण पर निरंतर ध्यान देना आवश्यक है। यदि विकास की रफ़्तार में विरासत उपेक्षित हुई, तो लखनऊ अपनी वही पहचान खो देगा, जिसके लिए वह दुनिया में जाना जाता है।

भविष्य का लखनऊ तभी सुंदर होगा, जब वह संतुलन का संकल्प लेगा — विकास विरासत को मिटाकर नहीं, उसी की नींव पर खड़ा होगा। पुराने मोहल्लों की मरम्मत, कारीगरों को बाज़ार और सम्मान, नदी की स्वच्छता, हरे-भरे पार्क और पैदल चलने वालों के लिए सुरक्षित रास्ते — ये सब भविष्य की योजना का हिस्सा होने चाहिए। तकनीक और आधुनिकता का स्वागत हो, पर शहर की भाषा, तहज़ीब और आपसी भाईचारा उसकी आत्मा के रूप में बचा रहे। नया और पुराना एक-दूसरे के विरोधी नहीं, पूरक बनें।

इस पूरी दास्तान को पीछे मुड़कर देखें तो एक बात स्पष्ट होती है — लखनऊ ने हर दौर में स्वयं को नए रूप में ढाला है। वह नवाबों का शहर रहा, क्रांति का शहर रहा, साहित्य और पत्रकारिता का शहर रहा और आज वह संभावनाओं का शहर बन रहा है। उसकी गलियों में इतिहास है, उसके बाज़ारों में मेहनत है, उसके लोगों में तहज़ीब है और उसके युवाओं में भविष्य के सपने हैं। यही निरंतरता लखनऊ को साधारण नगरों से अलग करती है।

अंत में यही कहना उचित होगा कि लखनऊ केवल एक शहर नहीं है, वह एक तहज़ीब है — जीने का एक अंदाज़, बोलने का एक सलीक़ा और मिलने का एक तरीक़ा। हर पीढ़ी इस तहज़ीब में अपना अध्याय जोड़ती है और दास्तान आगे बढ़ती रहती है। अतीत से भविष्य तक की यह यात्रा तभी सार्थक होगी, जब आने वाली पीढ़ियाँ भी इस शहर से उतनी ही मोहब्बत करें, जितनी पिछली पीढ़ियों ने की है। दास्तान-ए-लखनऊ यहीं समाप्त नहीं होती, वह हर उस दिल में जारी रहती है, जो इस शहर को अपना मानता है।

दास्तान का सार

बदलता लखनऊ मेट्रो, रिवरफ्रंट और नई बस्तियों के साथ भविष्य की ओर बढ़ रहा है, पर उसकी ताक़त विरासत और तहज़ीब के संतुलन में ही है। लखनऊ हर पीढ़ी के साथ अपनी दास्तान नए सिरे से लिखता है।

लखनऊ — एक दृष्टि में

प्रमुख समय-रेखा

1722 — सआदत खान अवध के नवाब • 1775 — लखनऊ अवध की राजधानी • 1784 — बड़ा इमामबाड़ा और रूमी दरवाज़ा • 1838-39 — छोटा इमामबाड़ा • 1847-56 — वाजिद अली शाह; 1856 अवध का विलय • 1857 — जंग-ए-आज़ादी, बेगम हज़रत महल का नेतृत्व • 1858 — नवल किशोर प्रेस • 1881 — हुसैनाबाद घंटाघर • 1916 — लखनऊ समझौता • 1920 — लखनऊ विश्वविद्यालय • 1947 के बाद — उत्तर प्रदेश की राजधानी • 2008 — चिकनकारी को GI टैग • 2017 — मेट्रो का शुभारंभ • 2025 — UNESCO Creative City of Gastronomy

प्रमुख धरोहर-स्थल

बड़ा इमामबाड़ा • छोटा इमामबाड़ा • रूमी दरवाज़ा • रेज़िडेंसी • छतर मंज़िल
• हुसैनाबाद घंटाघर • सिकंदर बाग • दिलकुशा कोठी • कैसरबाग • ला
मार्टिनियर • लक्ष्मण टीला • अंबेडकर (डॉ. भीमराव अंबेडकर सामाजिक
परिवर्तन स्थल) स्मारक

संदर्भ-टिप्पणी

यह पुस्तक उपलब्ध ऐतिहासिक स्रोतों, लोकप्रिय इतिहास-ग्रंथों और सार्वजनिक अभिलेखों पर आधारित है। लोक-कथाओं और प्रचलित कथाओं को कथा के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है; विवादित प्रसंगों में संतुलित दृष्टिकोण रखा गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य शैक्षणिक शोध का दावा करना नहीं, बल्कि आम पाठक तक लखनऊ की विरासत, तहज़ीब और लोगों की कहानी सरल भाषा में पहुँचाना है। विभिन्न स्रोतों में तिथियों और विवरणों में मामूली अंतर संभव है, इसलिए महत्वपूर्ण तथ्यों के लिए पाठक आधिकारिक अभिलेखों का भी अवलोकन कर सकते हैं। लेखक उन सभी इतिहासकारों, लेखकों और संस्थाओं के प्रति आभार व्यक्त करता है, जिनके कार्यों से लखनऊ की यह दास्तान नई पीढ़ी तक पहुँच सकी है।

लेखक परिचय



कामरान असद

संपादक — मानवाधिकार मीडिया

अध्यक्ष — पब्लिक राइट्स एसोसिएशन

अध्यक्ष — भारतीय मानवाधिकार महासंघ

कामरान असद पत्रकार, सामाजिक कार्यकर्ता और मानवाधिकार नेता हैं। मानवाधिकार मीडिया के संपादक के रूप में वे वर्षों से आम आदमी की आवाज़ को मंच देते आए हैं — उन लोगों की कहानियाँ सामने लाते हुए जिनकी सुनवाई अक्सर कहीं नहीं होती।

लखनऊ से उनका रिश्ता सिर्फ़ निवास का नहीं, कर्म का है — इसी शहर की गलियों, मोहल्लों और लोगों के बीच रहकर उन्होंने पत्रकारिता और समाज-सेवा का अपना सफ़र तय किया है। "दास्तान-ए-लखनऊ" उसी मोहब्बत और अनुभव का दस्तावेज़ है।

अन्य पुस्तकें : बदलती पीढ़ी : सोच से समाज तक का सफ़र • अच्छे लोग हार क्यों जाते हैं? • आम आदमी के अधिकार • रिश्ते : एक आम घर की कहानी • नेताजी — सुभाष चन्द्र बोस : एक जीवन गाथा

वेबसाइट : **kamranasad.in**

ईमेल : kamranasadjournalist@gmail.com

इस पुस्तक के बारे में

लखनऊ सिर्फ एक शहर नहीं है — यह एक तहज़ीब है, एक अंदाज़ है, एक ज़िंदा दस्तावेज़ है। गोमती के किनारे बसी उसकी प्राचीन जड़ों से लेकर नवाबों के दरबार तक, बड़े इमामबाड़े की भूलभुलैया से लेकर चिकनकारी की नाज़ुक कढ़ाई तक, कबाब की खुशबू से लेकर मेट्रो की रफ़्तार तक — यह पुस्तक लखनऊ की पूरी पहचान को एक साथ सामने लाती है।

इतिहास, ऐतिहासिक इमारतें, साहित्य, संगीत, सियासत, पत्रकारिता, गली-मोहल्ले, बाज़ार और आम लोगों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी — अठारह अध्यायों में बुनी यह दास्तान बताती है कि लखनऊ कल क्या था, आज क्या है और कल क्या बन सकता है। यह केवल इतिहास की किताब नहीं, लखनऊ की विरासत और उसके बदलते भविष्य का दस्तावेज़ है।

“मुस्कुराइए — आप लखनऊ में हैं!”

कामरान असद की अन्य पुस्तकें :

- बदलती पीढ़ी : सोच से समाज तक का सफ़र
- अच्छे लोग हार क्यों जाते हैं?
- आम आदमी के अधिकार • रिश्ते : एक आम घर की कहानी
- नेताजी — सुभाष चन्द्र बोस : एक जीवन गाथा

सभी पुस्तकें उपलब्ध हैं — kamranasad.in